नवंबर 2001

मूल्य : सात रुपये

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास को समर्पित

जब हर थाली भर जाएगी

ग्रामीण विकास के लिए शैक्षणिक कार्यक्रम

ग्रामीण विकास में पशुधन की भूमिका

214 जिलों में सर्वशिक्षा अभियान शुरू

सर्वशिक्षा अभियान नामक प्रारंभिक शिक्षा का नया कार्यक्रम देश के 26 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के 214 जिलों में शुरू कर दिया गया है। इस अभियान के तहत आरंभिक तैयारियों के लिए केंद्र ने 95 करोड़ रुपये जारी किए हैं। आशा की जाती है कि मार्च 2002 तक यह अभियान देश के सभी 593 जिलों में पहुंच जाएगा।

इस अभियान के तहत वर्ष 2003 तक 6 से 14 वर्ष के आयु वर्ग के बच्चों को विद्यालय या वैकल्पिक विद्यालय की परिधि में लाने, 2007 तक पांच वर्ष की प्राथमिक शिक्षा देने और 2010 तक आठ वर्ष की प्रारंभिक शिक्षा देने की व्यवस्था है। इस कार्यक्रम में विद्यालय भवनों के निर्माण, अध्यापकों की नियुक्ति, उनके प्रशिक्षण और जिन गांवों में शिक्षा सुविधाएं नहीं हैं, वहां विद्यालयों और वैकल्पिक विद्यालयों के लिए धन उपलब्ध कराया जाएगा। सभी अध्यापकों को प्रति वर्ष 500 रुपये का और विद्यालयों को 2000 रुपये का अनुदान दिया जाएगा।

सर्वशिक्षा अभियान को एक मिशन के रूप में चलाए जाने की योजना है। इस राष्ट्रीय अभियान के अध यक्ष प्रधानमंत्री और उपाध्यक्ष मानव संसाधन विकास मंत्री होंगे। यह कार्यक्रम राज्य और स्थानीय निकाय मिलाकर चलाएंगे। इसमें समाज के सक्रिय योगदान और स्वामित्व पर जोर दिया जाएगा। इस कार्यक्रम में बालिकाओं, अनुसूचित जाति/जनजाति के बच्चों, कामकाजी बच्चों, झुग्गी–झोपड़ियों के बच्चों और विशेष देखभाल की जरूरत वाले बच्चों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाएगा।

राष्ट्रीय बाल भवन और राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षण परिषद को छोड़कर, केंद्र द्वारा प्रायोजित सभी प्रारंभिक शिक्षा योजनाओं को नौवीं योजना के बाद सर्वशिक्षा अभियान में मिला दिया जाएगा। मध्यान्ह भोजन योजना एक अलग कार्यक्रम के रूप में बनी रहेगी तथा इसके लिए खाद्यान्न और यातायात का खर्च केंद्र सरकार वहन करेगी और खाना पकाने का खर्च राज्य सरकारें उठाएंगी। ❑

सफाई अभियान के लिए आंध्र प्रदेश को अनुदान

ग्रामीण विकास मंत्रालय ने वर्ष 2001–2002 के दौरान आंध्र प्रदेश को समग्र सफाई अभियान के लिए 6 करोड़ 25 लाख दो हजार रुपये का अनुदान जारी किया है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीणों के जीवन स्तर में सुधार लाना और महिलाओं को सम्मान दिलाना है। सफाई की परिकल्पना में मल–मूत्र और कचरे का सुरक्षित निबटान तथा व्यक्तिगत, घरेलू और पर्यावरण स्वच्छता शामिल है।

समग्र सफाई अभियान की रूपरेखा ऐसी बनाई गई है कि यह जिले की विशेष आवश्यकताओं के अनुरूप हो। इसमें समग्र भागीदारी, शिक्षा और संचार की व्यापक जानकारी, वैकल्पिक प्रसारण प्रणाली और अधिक लचीले तथा मांग–उन्मुख निर्माण नियम शामिल हैं। ❑

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास मंत्रालय की प्रमुख मासिक पत्रिका

वर्ष : 47 ● अंक : 1

कार्तिक–अग्रहायण 1923

नवंबर 2001

कार्यकारी संपादक
राकेश रेणु

उप संपादक
जयसिंह

संपादकीय पत्र–व्यवहार
संपादक, कुरुक्षेत्र
कमरा नं. 655/661, 'ए' विंग,
गेट नं. 5, निर्माण भवन
ग्रामीण विकास मंत्रालय
नई दिल्ली–110011
दूरभाष : 3015014, फैक्स : 011–3015014
तार : ग्राम विकास

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
डी.एन. गांधी

विज्ञापन व्यवस्थापक
पी.सी. आहूजा

आवरण
शमशेर अहमद खान

फोटो सौजन्य
आईईसी डिवीजन, ग्रामीण विकास मंत्रालय

मूल्य एक प्रति	:	सात रुपये
वार्षिक शुल्क	:	70 रुपये
द्विवार्षिक	:	135 रुपये
त्रिवार्षिक	:	190 रुपये

विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)

पड़ोसी देशों में	:	500 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	700 रुपये (वार्षिक)

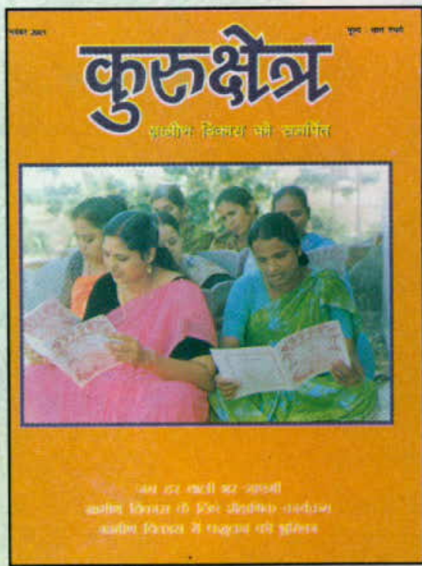

इस अंक में

लेख

- जब हर थाली भर जाएगी — कुलदीप शर्मा — 4
- हमसब बन सकते हैं पानीदार — राजेन्द्र सिंह — 9
- महिला विकास योजनाएं और उनका क्रियान्वयन — डा. ललित लट्टा — 12
- ग्रामीण विकास के लिए शैक्षणिक कार्यक्रम : समस्याएं और निदान — डा. ए.सी. जैन, अमर कुमार जैन — 15
- प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा में पंचायतों की भूमिका — डा. मधुश्री सिन्हा — 21
- महिला सशक्तीकरण और खेतिहर महिलाएं — अनिल चमड़िया — 24
- गांवों का नक्शा बदलेगी सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना — वेद प्रकाश अरोड़ा — 27
- ग्रामीण विकास में पशुधन की भूमिका — डा. गणेश कुमार पाठक — 31
- रोजगार और गरीबी पर उदारीकरण के प्रभाव — डा. आफताब अहमद सिद्दीकी 39
- मध्य प्रदेश में पंचायतों की कार्यप्रणाली देवास जिले की ग्राम पंचायतों के संदर्भ में एक अध्ययन — डा. आशीष भट्ट — 42

साहित्य

- आरोप (कहानी) — अमरेन्द्र कुमार — 35
- तीन कविताएं — दिनेश अनिकेत — 38

स्वास्थ्य

- पोषक तत्वों से भरपूर मूंगफली — डा. नलिन चन्द्र त्रिपाठी — 45

पुस्तक चर्चा

- प्लास्टिक प्रदूषण के खतरे — कमलेश मीणा — 48

कुरुक्षेत्र की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत के बारे में विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से पत्र–व्यवहार करें। विज्ञापनों के लिए विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से संपर्क करें। दूरभाष : 6105590, फैक्स : 6175516

कुरुक्षेत्र में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

मत–सम्मत

अलग पहचान

सितम्बर 2001 अंक इस कदर छू गया कि मैं यह पत्र लिखने से अपने आपको रोक नहीं सका। मैं ग्रामीण हूं और ग्रामीण विकास हेतु समर्पित पत्रिका हमारे ग्रामीण परिवेश में अमृत–बूंद जैसी है। इस पत्रिका ने अपनी गुणवत्ता (सामग्री, कागज और रंगीन छपाई) की वजह से अपनी अलग पहचान बना ली है। सितम्बर माह 2001 में 'ग्रामीण बेरोजगारी एवं जवाहर ग्राम समृद्धि योजना' तथा 'ग्रामीण विकास हेतु शैक्षणिक कार्यक्रमः समस्याएं एवं निदान' काफी रुचिकर लगे, ग्रामवासियों की ओर से बहुत धन्यवाद।

श्यामानंद शर्मा
खैरा (समेली)
कटिहार, (बिहार)

महाराष्ट्र को भी स्थान दें

ग्रामीण विकास को समर्पित *कुरुक्षेत्र* सचमुच ही बड़ी महत्वपूर्ण है। हमारे देश की ज्यादातर जनता गांवों में रहती है। बिमारू राज्य (बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश) तो गरीबी से घिर चुके हैं।

कुरुक्षेत्र में प्रकाशित होने वाले ज्यादातर लेख बिमारू राज्यों से संबंधित होते हैं। अन्य राज्यों को कम स्थान दिया जा रहा है। महाराष्ट्र की तो बात मानो कभी आती ही नहीं। महाराष्ट्र एक प्रगतिशील राज्य है लेकिन ग्रामीण भाग की तुलना थोड़ी–बहुत बिमारू राज्यों से की जा सकती है।

संजीव कबीर
उत्कर्ष नगर, कुवारजाव
रत्नागिरि–415639,
महाराष्ट्र

स्त्रियों की दशा और दिशा

कुरुक्षेत्र के सितम्बर 2001 अंक में महेश कुमार का लेख 'ग्रामीण महिलाएं : शिक्षा से कोसों दूर' बहुत ही सटीक व तथ्यों पर आधारित था। इस तथ्य से कोई इनकार नहीं कर सकता कि किसी भी स्वस्थ एवं विकसित समाज के निर्माण में स्त्री व पुरुष दोनों की बराबर की सहभागिता होना परम आवश्यक है, परन्तु यह विडम्बना ही है कि आज के स्वतंत्र भारत में स्त्रियों की शिक्षा का कोई

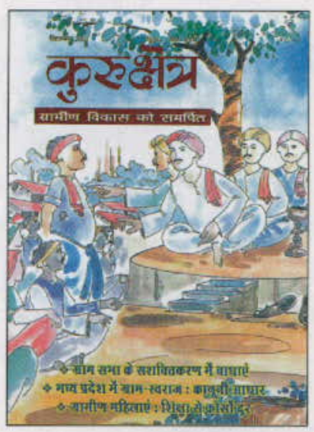

विशेष प्रबंध नहीं है। कन्या विद्यालय या महाविद्यालय खोल देने मात्र से ही स्त्रियों की शिक्षा की समस्या हल नहीं हो सकती। एक समय था जब स्त्रियों को पूजनीय समझा जाता था, उन्हें गृहलक्ष्मी और गृहदेवियों के नाम से सम्बोधित किया जाता था, उन्हें पुरुषों के समान शिक्षा मिलती थी, परिवार में उनका पद अत्यंत प्रतिष्ठापूर्ण था, लेकिन हमारा यह दुर्भाग्य है कि देश को स्वतंत्रता तो मिल गई परंतु स्त्रियों की स्वतंत्रता का अपहरण हो गया। पर हम यह भूल गए कि जब महिलाएं ही अशिक्षित होंगी तो निश्चय ही उनके वंशज भी शिक्षा ग्रहण करने के प्रति गंभीर नहीं होंगे। एक महिला के शिक्षित होने का अर्थ है उस परिवार की दिशा और दशा में अभूतपूर्व बदलाव। अतः महिलाओं को समाज में बराबरी का दर्जा दिलाने के लिए यह नितांत आवश्यक है कि हम स्त्री का आदर करें, उसे अपने समान अधिकार दें और उनकी निरक्षरता को दूर करें। जब निरक्षरता दूर होगी तो निश्चय ही उनकी गरीबी दूर होगी, आर्थिक असमानता समाप्त होगी, राजनीतिक व्यवस्था एवं निर्णय लेने की प्रक्रिया में उन्हें पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त होगा।

चंद्र किशोर जायसवाल
प्रताप गंज, सुपौल (बिहार)

पवन ऊर्जा से ग्रामीण विद्युतीकरण

मैं *कुरुक्षेत्र* का पिछले दो–तीन वर्षों से नियमित पाठक हूं। ग्रामीण विकास को समर्पित *कुरुक्षेत्र* का प्रत्येक अंक रोचक, ज्ञानवर्धक एवं संग्रहणीय होता है।

सितम्बर 2001 अंक में पी.आर. त्रिवेदी का आलेख 'पवन ऊर्जा के माध्यम से खुल रहे हैं विकास और रोजगार के नए मार्ग' ग्रामीण क्षेत्रों की ऊर्जा और विद्युत आवश्यकता को पूरा करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। इस परियोजना को केवल राजस्थान तक सीमित नहीं रखना चाहिए बल्कि देश के सभी राज्यों में, खासकर पठारी प्रदेशों में पवन ऊर्जा के दोहन हेतु सर्वेक्षण कराकर क्रियान्वित करना चाहिए। सरकार को इसके लिए एक ग्रामीण गैर–परम्परागत ऊर्जा मंत्रालय का गठन करना चाहिए, साथ–ही–साथ वैसे ग्रामीण क्षेत्र जहां अभी तक बिजली नहीं पहुंच पाई है, वहां इस योजना को तत्परता के साथ लागू करने की जरूरत है। तभी ग्रामीण विद्युतीकरण का लक्ष्य पूरा हो सकेगा।

सचिन कुमार
बासोडीह, सतगांव, कोडरमा
(झारखंड) पिन – 805132

सरकारी योजनाओं की समीक्षा वाले लेख प्रकाशित करें

कुरुक्षेत्र ग्रामीण विकास का अमृत है। इसमें ऐसी योजनाएं जो भारत सरकार या

प्रदेश सरकार द्वारा चलाई जा रही हैं उनकी समीक्षा वाले लेख पर ज्यादा जोर दिया जाना चाहिए। ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा स्वयंसेवी संस्थाओं के लिए दिए जा रहे योगदान तथा विशेष रूप से इस मंत्रालय द्वारा शोधकार्य हेतु अनुदान की विज्ञप्ति कर ग्रामीण विकास का मार्गदर्शन करने में *कुरुक्षेत्र* एक महत्वपूर्ण काम कर रहा है। यह भारतीय भविष्य को उज्जवल बनाने की दिशा में तत्पर है।

राजन मिश्रा
प्रवक्ता–समाजशास्त्र
एस.आर.के.(पी.जी.) कालेज
फिरोजाबाद

ग्रामीण विकास का दर्पण

कुरुक्षेत्र का अगस्त 2001 का अंक पढ़ा। पत्रिका में कविता 'अहसास' तथा लघुकथा 'अलगाव' बहुत अच्छी लगी। महत्वपूर्ण लेखों में 'ग्रामीण क्षेत्रों में एड्स के खिलाफ लड़ाई' 'झारखंड वन क्षेत्र में पर्यटन संभावनाएं', 'ग्रामीण जल प्रबंधन : कुछ सुझाव' साथ में स्वास्थ्य चर्चा बहुत रोचक लगे। आशा है जल प्रबंधन तथा एड्स से संबंधित और जानकारियां समय–समय पर प्रकाशित करते रहेंगे। एड्स हमारी दुनिया की ऐसी विभीषिका है जिससे मुक्ति का फिलहाल कोई सक्षम विकल्प हमारे पास नहीं है। एड्स के आतंक की प्रेत छायाएं हमारे समय , समाज और दुनिया में खौफनाक ढंग से देखी और अनुभव की जा रही हैं। ऐसी स्थिति में आशा है कुरुक्षेत्र भी एड्स के खिलाफ चल रहे विश्वव्यापी अभियान में सहायक बनेगा।

ग्रामीण उद्योग एवं समस्याएं, कृषि ऋण, ग्रामीण विकास में स्वास्थ्य केन्द्र एवं बैंकों की भूमिका पर भी लेख प्रकाशित करें। साथ में एक शिकायत, जहां झारखंड के प्रत्येक प्रखंड तक *कुरुक्षेत्र* उपलब्ध होना चाहिए वहां यह कुछ मुख्यालयों तक ही सीमित रह जाती है, अतः माननीय प्रसार प्रबंधक इस पर ध्यान दें जिससे *कुरुक्षेत्र* में प्रत्येक ग्रामीण का विकास प्रतिबिंब स्पष्ट दिखाई दे।

राजकुमार ठाकुर
बड़ा दुर्गा मंदिर रोड, गुमला
झारखंड

ज्ञान और मनोरंजन का मिलाप

माह अगस्त की *'कुरुक्षेत्र'* पत्रिका पढ़ी पत्रिका काफी पसंद आई, क्योंकि इसमें ग्रामीण समस्या तथा महिलाओं की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। आज ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है जिसमें महिला सक्रिय रूप से शामिल नहीं हैं। हर क्षेत्र में पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही हैं, फिर भी हमारे देश में महिलाओं पर अन्याय – अत्याचार तथा

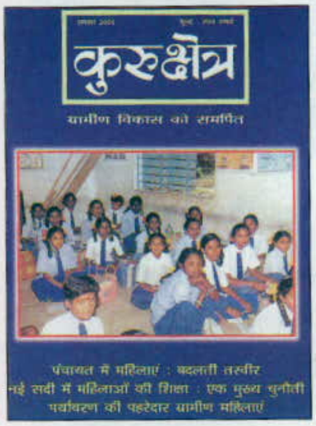

नारी शोषण की घटनाएं घटती रहती हैं। इसका एकमात्र कारण यह है कि आज भी ग्रामीण इलाकों में शिक्षा का अभाव है। जब तक शिक्षा की गंगा देश के कोने–कोने में, ग्रामीण इलाके में नहीं पहुंचती तब तक नारी के लिए निर्भयता से इस दुनिया में अपने आत्मसम्मान को बचा पाना असंभव है। इस संबंध में 'पंचायत में महिलाएं, बदलती तस्वीर' शीर्षक प्रतापमल देवपुरा का लेख पढ़कर लगता है कि आशा की कोई किरण आज भी है जो इस घने अंधेरे को प्रकाशमय बना सकती है।

पंचायत स्तर पर कार्यरत विभिन्न ग्रामीण महिलाओं से मुलाकात के बारे में पढ़कर लगा कि यही ग्रामीण महिलाएं हमारी समाज रचना की बुनियाद हैं और इनके मजबूत रहने पर ही स्वस्थ और सुंदर समाज का निर्माण हो सकता है।

पत्रिका में शामिल एक अन्य लेख – 'गरीबी के चक्रव्यूह में ग्रामीण गरीब' (लेखक : डा. कृष्ण कुमार सिंह) भी पसंद आया क्योंकि ग्रामीण जनता की समस्याओं के बारे में इस लेख में विस्तार से लिखा गया है। 'अलग रहने का सुख' शीर्षक कहानी काफी मनोरंजक है। *कुरुक्षेत्र* ज्ञान और मनोरंजन का एक अच्छा मिलाप है।

मकरंद कुलकर्णी
शास्त्रीनगर, मू.पो.ता. वैजापुर
औरंगाबाद (महाराष्ट्र) 423701

गांव की आंखें

मैं कुरुक्षेत्र को गांव की आंखें समझता हूं जिसमें गांव की उन्नति के लिए मध्य प्रदेश सरकार द्वारा पंचायत को दिए गए अधिकार के साथ पंचों के कर्तव्य और गांव की भागीदारी का उल्लेख किया गया है तथा लहसुन से लाभ, घरेलू उद्योग स्थापित कर परिवार की महिलाओं को काम देने हेतु अगरबत्ती आदि बनाने के लिए विस्तार से नुस्खे बताए गए हैं।

रासायनिक खाद से उत्तम प्राकृतिक खाद की प्रयोग विधि तो सोने में सुहागा है।

नागेश्वर प्रसाद जायसवाल
बड़ास कोठी,
पूर्णिया (बिहार)

प्रेरणा भरी दस्तक

कुरुक्षेत्र का अगस्त अंक वास्तव में स्वतंत्रता दिवस की प्रेरणाभरी दस्तक देने वाला लाजबाब अंक था।

ग्रामीण जनजीवन की आज की अहम समस्या पर आधारित लेख 'गरीबी के चक्रव्यूह में ग्रामीण गरीब' प्रासंगिक रहा। योजनाओं की लम्बी फौज होते हुए भी वांछित लोगों को न्यूनतम लाभ भी नहीं मिल पाना इस बात की पुष्टि करता है कि इन योजनाओं के संवाहक अपने दायित्व के प्रति पूर्ण रूप से वफादार नहीं होते। 'नई सदी में महिलाओं की शिक्षा', 'प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना एक समीक्षा' सराहनीय प्रस्तुति है, 'पंचायत में महिलाएं बदलती तस्वीर' और 'अलग रहने का सुख' कहानी भी समाज की अनकही दास्तां को बयां करती है।

छैल बिहारी शर्मा 'इन्द्र'
शिवसदन, छाता
(उ.प्र.)

जब हर थाली भर जाएगी

कुलदीप शर्मा

देश से भूख और गरीबी मिटाने के लिए व्यापक प्रयास किए जा रहे हैं। इसी श्रृंखला में प्रतिवर्ष 16 अक्तूबर को खाद्य एवं कृषि संगठन तथा भारत सरकार द्वारा विश्व खाद्य दिवस का आयोजन किया जाता है। इस वर्ष का विषय 'गरीबी निवारण के लिए भूख से लड़ाई' चुना गया है। इस मौके पर हमने एक विशेष आलेख तैयार कराया है जिसमें न केवल देश की वर्तमान खाद्य स्थिति की चर्चा है बल्कि भोजन को लेकर भविष्य की संभावनाएं भी बताई गई हैं।

इसमें दो राय नहीं कि एक लंबे समय से कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ रही है, आज भी है और आगे भी रहेगी। इस समय भी देश के सकल घरेलू उत्पाद का 31.8 प्रतिशत खेतीबाड़ी में जुड़ी 70 प्रतिशत जनसंख्या के पसीने से पैदा होता है। दूसरी ओर, अमीर देशों में मुश्किल से 2 से 7 प्रतिशत आबादी ही खेती करती है। हमारा सौभाग्य है कि प्रतिवर्ष 2.1 प्रतिशत जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ कृषि उत्पादन भी उसी रफ्तार से बढ़ रहा है। सन् 1950-51 के 5 करोड़ 10 लाख टन खाद्यान्न उत्पादन की तुलना में 1994-95 में खाद्यान्न का कुल उत्पादन 19 करोड़ 20 लाख टन से ऊपर जा पहुंचा जो आज 2001 में 20 करोड़ टन का आंकड़ा भी पार कर रहा है। यही नहीं, हमारे सुरक्षित अन्न भंडार में 3 करोड़ 60 लाख टन से अधिक अनाज जमा है। तिलहनों की खेती मुख्यतः वर्षा पर निर्भर करती है। वहां भी इतनी आकर्षक उपलब्धि मिली है कि विगत वर्षों में खाने के तेल के आयात पर किसी भी अधिकतम व्यय से दुगुनी पूंजी खली और गौण तिलहनों के निर्यात से प्राप्त हो रही है। बागवानी, पशुधन, दूध, मछली और मुर्गीपालन आदि के क्षेत्र में भी विकास की नई दिशाएं खुली हैं। कृषि उत्पादन में टिकाऊपन का टीका लगाने की दिशा में भी हमने अनेक ठोस कदम उठाए हैं परंतु अब भी इस महान राष्ट्र की विशाल कृषिगत संभावनाओं के सदुपयोग की भारी गुंजाइश है।

पीछे मुड़कर देखते हैं तो स्वतंत्रता के बाद पांचवें दशक की कृषि नीतियों का झुकाव एक तरह से बुनियादी सामाजिक सुधारों की ओर रहा। उन्हीं दिनों सिंचाई व्यवस्था और उर्वरक उत्पादन में पूंजी निवेश के द्वारा आधुनिक कृषि की नींव रखी गई। छठे दशक में प्राकृतिक आपदाओं के तुषारापात ने हमें बाहर से अनाज मंगवाने पर मजबूर किया। इस अभिशाप को भी वरदान में बदला गया और इन्हीं दिनों भारतीय कृषि को नई दिशा देने की पहल शुरू हुई। संकट को संयोग मानकर अधिक उपजशील किस्मों और बीज, खाद, पानी तथा पौध रक्षा पर केंद्रित प्रभावशाली तकनीकी कार्यक्रम चलाए गए। विविध तकनीकों के समन्वित विकास और प्रसार की बदौलत सन् 1970-71 में 10 करोड़ 80 लाख टन खाद्यान्न का अभूतपूर्व कीर्तिमान स्थापित किया गया और हरित क्रांति का सूत्रपात हुआ। देश में पहली बार खाद्यान्न उत्पादन को स्थायित्व और आत्मनिर्भरता का गौरव प्राप्त हुआ।

सातवें दशक में पोषण सुरक्षा की जरूरत महसूस हुई और डेरी, मुर्गीपालन, शूकर पालन, मछली पालन और बागवानी जैसी कृषि से जुड़ी विधाओं के विकास और विविधीकरण की ओर ध्यान गया। सन् अस्सी के बाद के दशक में तिलहन उत्पादन, समेकित कीट प्रबंध, प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और उनके कारगर उपयोग में काफी हद तक सफलता मिली। समन्वित ग्रामीण विकास के कार्यक्रम छोटे और सीमांत किसानों, खेतिहर मजदूरों, ग्रामीण कारीगरों, कमजोर वर्गों और ग्रामीण महिलाओं तक पहुंचने लगे। इसके परिणाम पर्याप्त उत्साहवर्धक रहे और गरीबी की नींव हिलने लगी।

एकजुटता से हों बड़े प्रयास

कहते हैं कि दाने-दाने पर खाने वाले का नाम लिखा होता है मगर कुछ दाने ऐसे भी होते हैं जो बरबाद हो जाते हैं और खाने वालों के मुंह तक नहीं पहुंच पाते। कुछ मुंह भी ऐसे होते हैं जिनके नाम का दाना ही नहीं उपज पाता। दोनों ही दशा में भूख पैदा होती है। इसका सीधा परिणाम गरीबी पर आकर रुकता है। तीसरे विश्व के माथे पर भूख और गरीबी का यह कलंक उनकी निगाहें नीची किए है। विश्व में चीन और भारत दो ही ऐसे देश हैं जहां की आबादी एक अरब से अधिक है। खाद्य एवं कृषि संगठन द्वारा गरीबी और भूख से लड़ने के लिए लंबे समय से बीड़ा उठाया गया है। संगठन द्वारा हर वर्ष 16 अक्तूबर विश्व खाद्य दिवस के रूप में मनाया जाता है और इसके लिए एक खास विषय सुझाया जाता है। इस वर्ष का विषय 'गरीबी निवारण के लिए भूख से लड़ाई' यानी fight hunger to reduce poverty है। यह नारा

मात्र नारा नहीं है बल्कि संगठन का साथ देने वाले 150 देशों ने आह्वान किया कि वे अपने–अपने स्तर पर इस विषय में जागरूकता लाएं और जन–जन तक इसका महत्व पहुंचाएं।

विश्व खाद्य दिवस पर दिए गए नारे के महत्व को समझते हुए संगठन के महानिदेशक जैक्स दूफ ने 16 अक्तूबर को अपने संदेश में कहा था कि 'हम यह कतई नहीं मान सकते कि गरीबी उन्मूलन–कार्य के दौरान भुखमरी का सफाया एक उपोत्पाद के रूप में सामने आएगा। गरीबी उन्मूलन के वृहत लक्ष्य को पाने के लिए भूख के खिलाफ संघर्ष और कृषि विकास के कार्यों में तेजी लाना बेहद जरूरी है। गरीबी वह रक्तबीज है जिसके रक्त की गिरती हर बूंद नया दैत्य खड़ा करती है। इसके पीछे की आत्मा भूख है। इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि इसे इसकी आत्मा के साथ नष्ट किया जाए। यानी गरीबी के खिलाफ जारी वर्तमान जंग को जीतने के लिए सबसे पहले भुखमरी का सफाया करना होगा। भूख अकेली नहीं आती। भूख से रोगों का जन्म होता है, अकाल मृत्यु होती है। वहीं यह भूख लोगों की कार्यक्षमता को क्षीण कर देती है। इतना ही नहीं यह, बच्चों से उनकी सीखने की शक्ति छीन लेती है, उनका सम्पूर्ण विकास अवरुद्ध कर देती है। बात तब एक पीढ़ी तक ही नहीं ठहर जाती। इस प्रकार का दुश्चक्र खराब स्वास्थ्य के रूप में एक पीढ़ी से दूसरी, फिर तीसरी, फिर निरंतर चलता रहता है। यह मानवाधिकार का सरासर उल्लंघन है।

अगर समस्या के मूल में जाएं तो एक बात स्पष्ट होती है कि गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम की नीतियां अधिकांश विशिष्ट तौर पर भुखमरी को मिटाने के लक्ष्य के प्रति केन्द्रित नहीं हैं। नीति–निर्माता काफी अरसे से इस पूर्वाग्रह से ग्रस्त रहे हैं कि अगर आय का स्तर बढ़ता है तो अर्थव्यवस्था का विकास अवश्यंभावी है तथा इसका लाभ अंततः भूख और भुखमरी से संघर्षरत लोगों तक पहुंचेगा ही। लेकिन कुपोषण न सिर्फ गरीबी का एक कारक है बल्कि इसका प्रभाव भी है।

हमारे देश में अनाज के विपुल भंडार को लेकर कई प्रश्न खड़े किए जा रहे हैं। इसके उचित उपयोग को लेकर सुप्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक डा. एम.एस. स्वामीनाथन ने एक सृजनात्मक और सटीक उपाय सुझाया है। उनका दीर्घकालिक हल है कि 'अनाज बैंक' की स्थापना की जाए। उनके अनुसार अगर केन्द्र सरकार द्वारा कुल जमा अनाज का दस प्रतिशत भी इस प्रकार की बैंकों को सौंप दिया जाए तो काफी हद तक भूख की जंग लड़ी जा सकती है। डा. स्वामीनाथन का सुझाव है कि भूख के खिलाफ निर्णायक लड़ाई में इन सामुदायिक अनाज बैंकों का इस्तेमाल किया जाना चाहिए। निश्चिय ही यह एक महत्वपूर्ण सुझाव है। हाल ही में प्रधानमंत्री द्वारा ग्रामीण विकास योजना की शुरुआत की गई है। इसके तहत 10 हजार करोड़ रुपये की राशि से ग्रामीण स्तर तक फैली भूख को मिटाने के लिए रोजगार दिलाने जैसे कदम उठाए जाएंगे। इसमें मजदूरी के बदले अनाज दिया जाएगा। इसी प्रकार कुछ क्षेत्रों में निर्धनों के लिए बेहद कम दाम पर अनाज मुहैया कराए जाने के भी प्रयास हैं।

भारत जैसे विशाल देश में खाद्यान्न उत्पादन बढ़ जाना एक प्रशंसनीय कदम है। आने वाले कल में भूख से निपटने के और भी ठोस कदम उठाए जाएंगे। कृषि में नई वैज्ञानिक प्रौद्योगिकियों का समावेश इस समस्या से निपटने में सहायक होगा। केन्द्र सरकार द्वारा वर्ष 2007 तक देश से भूख मिटा देने का

संकल्प लिया गया है। जाहिर है कि इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कृषि वैज्ञानिक, किसान और सरकारी तंत्र को एक मंच पर आना होगा'। देश में विश्व खाद्य दिवस मनाने का सही तरीका यही है। खाद्य दिवस मनाना एक दिन की बात नहीं है, यह तो एक सतत प्रक्रिया है जो लक्ष्य प्राप्ति तक जारी रहेगी।

कृषि क्षेत्र में हमारे प्रयास

वैज्ञानिकों की सर्वेक्षण आधारित रिपोर्ट के अनुसार हमारी दुनिया में साढ़े तीन लाख के लगभग फूल वाले पौधे हैं। इनमें से अस्सी हजार बतौर भोजन प्रयोग की जाने वाली जातियां हैं। मगर हकीकत यह भी है कि इनमें से अभी केवल तीन हजार का ही प्रयोग किया जा सका है। 125 ऐसे पौधे अभी और हैं जिनको खेतों तक पहुंचाया जा सकता है। मगर इनमें से भी केवल 30 फसलें ऐसी हैं जो हमारी आहार संबंधी 15 प्रतिशत आवश्यकताओं को पूरा करती हैं। उत्पादन की दृष्टि से क्रम से रखा जाए तो गेहूं, चावल, मक्का, आलू, जौ, शकरकंद, अंगूर, सोयाबीन, जई, ज्वार, गन्ना, बाजार, केला, टमाटर, चुकंदर, राई, संतरा, नारियल, बिनौले का तेल, आम, मूंगफली आदि आते हैं। इसके अलावा एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि मनुष्य ने स्वयं भी कुछ अनाज तैयार किए हैं मसलन गेहूं और राई के संकर से ट्रिटीकेल या फिर हाइड्रीकेल विकसित किया है। इसी प्रकार अमरीका में एक नया फल आया है नेक्ट्राइन जो आलूचा और आडू की कोशिकाओं को मिलाकर पनपाया गया है। यह फल आडू और आलूचा दोनों का मजा देता है। कुछ समय पहले भारतीय वैज्ञानिकों ने भी टमाटर और आलू को मिलाकर एक पौधा तैयार किया था जिसका नाम 'पौमेटो' रखा गया था। हालांकि इस दिशा में परीक्षण चल रहे हैं लेकिन भविष्य में हमें इसमें अवश्य सफलता मिलेगी। दिल्ली स्थिति राष्ट्रीय पादप आनुवांशिक संसाधन ब्यूरो में ऐसी कई नई फसलें तैयार की जा रही हैं जो विदेशी हैं मगर उनके मेल से कई देसी फसलें सामने आएंगी। भविष्य की नई फसलों में एक नया नाम आया है अमरीका से। यहां के आदिवासियों ने 'तारबी' नामक एक तिलहनी फसल ढूंढ़ निकाली है। तेल भरे इसके दोनों में 46 प्रतिशत तक प्रोटीन होती है। उसकी पत्तियां भी पालक की तरह खाई जाती हैं। इसके अलावा यह पकने पर खुम्ब जैसा मजा देती है। अफ्रीका के कालाहारी मरुस्थल में 'भराना' नामक एक ऐसी जंगली फली खोजी गई है जो प्रोटीन से भरपूर है और स्वाद में बादाम जैसा मजा देती है। इसी प्रकार से मैक्सिको में 'बैफेलो गोर्ड' या भैंसा कद्दू की बात चली है जिसे कद्दू की तरह खाया जाता है। हमारे देश में भी मोटे अनाजों की एक लंबी शृंखला है जिन्हें आहार में शामिल किया जा सकता है। कुछ स्थानों पर उनको शामिल किया भी जा रहा है।

हमारे देश में अनाज के विपुल भंडार को लेकर कई प्रश्न खड़े किए जा रहे हैं। इसके उचित उपयोग को लेकर सुप्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक डा. एम.एस. स्वामीनाथन ने एक सृजनात्मक और सटीक उपाय सुझाया है। उनका दीर्घ–कालिक हल है कि 'अनाज बैंक' की स्थापना की जाए। उनके अनुसार अगर केन्द्र सरकार द्वारा कुल जमा अनाज का दस प्रतिशत भी इस प्रकार की बैंकों को सौंप दिया जाए तो काफी हद तक भूख की जंग लड़ी जा सकती है।

बहुत कुछ है गेहूं–चावल के सिवाय

हमारे यहां कितनी ही ऐसी खाद्य फसलें हैं जो अपेक्षाकृत अधिक पौष्टिक और सस्ती हैं। अगर इन्हें आहार में स्थान दिया जाए तो न केवल गेहूं, चावल से भरपूर उत्पादन की भारमभार से बचा जा सकेगा बल्कि भूख और गरीबी को अलविदा कहना भी सहज होगा। अल्प दोहित खाद्यान्न फसलों में ज्वार, जौ, कोदो, कुटकी, कंगनी, चीमा, रागी, संवा आदि की लम्बी लाइन है। कुछ समय पहले डा. एम.एस. स्वामीनाथन ने कहा था कि हमें मोटे अनाजों की महत्ता नए सिरे से जांचनी होगी। इन्हें गांव ही नहीं, शहरों में भी आहार का अंग बनाना होगा। जाहिर है, इसके पीछे डा. स्वामीनाथन का अनुभव और दूरदर्शिता थी। यह अनाज पौष्टिकता में गेहूं, चावल को बहुत पीछे धकेले हुए है। गेहूं और चावल में वसा जहां क्रमशः 1.7 और 0.5 प्रतिशत और खनिज तत्व 1.5 और 0.7 है, वहीं मोटे अनाजों से वसा 5 प्रतिशत और खनिज तत्व 3 प्रतिशत से भी अधिक है। अब बाजरा को ही लीजिए। इसमें प्रोटीन की मात्रा 17 प्रतिशत तक है। बाकी लौह, फास्फोरस, सोडियम, सल्फर, क्लोरीन भी भरपूर हैं। इसके अलावा अमीनो अम्लों में ट्रिप्टोफेन, लाइसिन, मिथिओन, थ्रिओनिन आदि की भी प्रचुर मात्रा है। अन्य मोटे अनाजों में कोदो, संवा, कुटकी आदि भी ऐसे हैं जिनमें भरूपर रेशा है। यही नहीं, इनमें ऊर्जा और विटामिन ए भी भारी मात्रा में हैं। शरीर की वृद्धि और अंधता निवारण के लिए दोनों ही काफी महत्वपूर्ण हैं।

भारतीय संस्कृति में व्रत–त्यौहार का खासा महत्व है। इस मौके पर हम कुट्टू, सिंघाड़ा, संवा, चौलाई जैसे खाद्य सहज खा लेते हैं। अगर इन्हें नियमित आहार में भी जगह दी जाए तो न केवल अतिरिक्त पौष्टिकता मिलेगी, बल्कि गेहूं–चावल पर जोर भी घटेगा। हमारे देश में खासी पहाड़ियों पर एक पौधा पाया जाता है एडले, इसके बीज ठीक टपकते आंसुओं की शक्ल के होते हैं। इसीलिए इसे जाब्स टीयर भी कहते हैं। यह इस क्षेत्र में चावल का विकल्प है। इससे यहां शराब भी तैयार की जाती है। इसी प्रकार दलहनी फसलों में सुतारी भी है। यह पौधा हमारे देश में उपेक्षित है। मगर जापान में इसकी बेहद मांग है। हर साल वहां 10–12 हजार टन सुतारी चीन, थाइलैंड, और म्यांमार से आयात की जाती है। हमारे देश में इस पर शोधकार्य अब शुरू हो गए हैं। पंत क्षेत्रीय विश्वविद्यालय के पर्वतीय परिसर रानी चौरी द्वारा इसकी दो उन्नत किस्में पीआरआर–1 और पीआरआर–2 विकसित की गई हैं। इसी प्रकार पंजाब कृषि

विश्वविद्यालय लुधियाना द्वारा भी इसकी दो किस्में आरबीएल–1 और आरबीएल–6 विकसित की गई हैं। इसी श्रृंखला में एडजूकी बीन, चौधारी फली, बाकला, कंकोड़ा, कलिंगड़ा, धानजीरा, एसीटूनो भी उल्लेखनीय हैं। अब वह समय आ चुका है जब इनका भी दोहन करना होगा और अनुसंधान की योजनाएं गेहूं–चावल से हटा इन पर केंद्रित करनी होंगी। वरना हमारे माथे पर लगा भूख और गरीबी का कलंक हमें, हमारी तथाकथित प्रगति और विकास को लगातार सालता रहेगा।

दाने–दाने पर भूखे का नाम

अनाज का भरपूर उत्पादन जितना महत्वपूर्ण है उससे कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है मेहनत की इस कमाई को बचाए रखना। सच पूछिए तो अच्छी फसल खड़ी कर लेना ही इतिश्री नहीं है। इसके उत्पादन को खेत से खलिहान और फिर भंडारण तक पूरी तरह से सुरक्षित रखना कहीं ज्यादा जरूरी है। इसमें दो राय नहीं कि हमने इतना खाद्यान्न उत्पादन कर लिया है कि हम आयात से निर्यात की स्थिति में आ पहुंचे हैं, मगर हमें अनाज की बरबादी पर भी गौर करना होगा। हमने गत वर्ष 20.6 करोड़ टन खाद्यान्न उत्पादन किया जिसका लगभग 10 प्रतिशत नष्ट हो गया। अगर हम यह हानि रोक पाते तो यह कितने ही दूसरे भूखों का पेट भरता। इस नुकसान के पीछे जैविक और अजैविक दोनों ही कारण हैं। एक वैज्ञानिक आकलन के अनुसार कटाई के बाद खेत से खलिहान और फिर भंडारण तक लाते–लाते 2.75 प्रतिशत अनाज बरबाद हो जाता है। संग्रहित अनाज को 9.33 प्रतिशत कीड़ों, 2.4 प्रतिशत चूहों, 0.85 प्रतिशत पक्षियों और 0.6 प्रतिशत नमी से क्षति पहुंचती है। इस तरह से हमारे देश में अनुमानतः 25 लाख टन अनाज बरबाद हो जाता है। अनाज को अगर केवल कीड़ों से ही बचा लिया जाए तो इससे बची मात्रा डेढ़ करोड़ व्यक्तियों को एक साल तक भोजन कराने के लिए पर्याप्त होगी।

जीन ताल से लय बिठानी होगी

भारत सहित कई देशों में जब खाद्यान्न उत्पादन में लगभग विप्लव की स्थिति आई

थी तो उसके मूल में जीन का खेल खेला गया था। दो पौधों की महत्वपूर्ण जीन इकट्ठी कर उनमें से बेहतरीन का चयन कर उनके मिलान से नया पौधा तैयार किया गया था जो अपने मां–बाप से बेहतर था। इस दिशा में हमारे यहां बौनी जीन की लम्बी छलांग ने हरित क्रांति कर दिखाई थी। अनाज भंडार लबालब भर गए। फिर भी दुखद अध्याय यह जुड़ा है कि पेट ज्यादा बड़ा है, भूख विकराल है। भूख से लड़ाई के लिए अब एक नया अध्याय जुड़ रहा है। वह है जीन पूल, यानी जीन ताल का। इसकी हद बहुत आगे जाती है। अब केवल एक पौधे के जीन समान कुल के पौधों में ही नहीं टिकेंगे, बल्कि वनस्पति जगत छोड़ बात जंतु जगत को भी मिलाने की आ गई है। मसलन वैज्ञानिकों ने खाद्य फसल में मछली के जीन डाल कर उनकी प्रोटीन मात्रा बढ़ा दी है। आने वाले कल में शाकाहार और मांसाहार मजबूती से हाथ थामे भूख से दो–दो हाथ करेंगे। कल अगर बाजार में गेहूं के आटे के विज्ञापन में लिखा हो कि मछलीयुक्त चपाती खाइए या घर की मुर्गी दाल बराबर तो चौंकिए नहीं। यही जीन ताल है।

भविष्य की थाली में पौष्टिक भोजन को परोसने की कल्पना ने जीन की आंच पर कल की रसोई तापने की सोची है। वैज्ञानिकों का मानना है कि यदि विभिन्न खाद्य फसलों में तरह–तरह के जीन डाल दिए जाएं तो उनकी पौष्टिकता बढ़ जाना हथेली पर सरसों उग जाने को सार्थक करेगी। एक ही जीन ताल में सारी जीन समा जाना ही पराजीनी फसलों के अध्याय को जन्म देता है। पश्चिमी देशों में पराजीनी फसलों के अध्याय खुल ही नहीं गए हैं, फल–फूल भी रहे हैं। आज दुनियाभर में 60 से अधिक पराजीनी किस्में विकसित कर ली गई हैं। अकेले अमरीका में ही पराजीनी किस्मों का फसल क्षेत्र 500 लाख एकड़ का आंकड़ा छू रहा है। चीन इस मामले में सबसे आगे है। इस तरह से आज दुनिया में सोयाबीन, मक्का, तिलहन, आलू आदि की पराजीनी फसलों ने लगभग पौने तीन करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र में अपनी जड़ें पनपा ली हैं। इन फसलों से प्राप्त होने वाले उत्पाद पश्चिमी देशों के कृषि उद्योग के बटुये में लगभग तीन अरब डालर की राशि पहुंचा रहे हैं। पराजीन फसलों के पंडितों का कहना है कि ऐसी फसलों की लोकप्रियता को देखते हुए बटुआ बड़ा करना पड़ेगा क्योंकि अगले दस सालों में यह कमाई 25 अरब करोड़ रुपये तक जा पहुंचेगी।

पिछले दिनों केलिफोर्निया के कुछ वैज्ञानिकों ने बर्फीले पानी में भी सहज जीवन बिताती एक मछली विंटर प्लाउंडर के शरीर का अध्ययन कर उसका जीन ढूंढ़ निकाला जो उसे जमान बिंदु पर भी सहज बनाता है। इस जीन को बाहर निकाल वैज्ञानिकों ने उसे टमाटर के पौधे में डाल दिया। पौधे ने पराई जीन अपनी देह में आती देखी तो कसमसाया जरूर मगर देखी जाएगी की तर्ज पर उसे कबूल कर लिया। बस, फिर क्या था वैज्ञानिकों के हाथ कमाल लग गया। टमाटर के पौधे में

अत्यंत ठंडे ताप पर जमने की शक्ति आ गई। परीक्षणों में तो यहां तक पाया गया कि उसकी पौष्टिकता भी अपेक्षाकृत बढ़ गई। लगभग ऐसा ही कमाल भारतीय वैज्ञानिकों ने भी दिखाया है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के नेशनल प्लांट बायोटेक्नोलाजी सेंटर के निदेशक डा. आर.पी. शर्मा और उनकी टोली ने जेली फिस की देह में समाई जीनों की बखिया उधेड़ी और उसका चमक पैदा करने वाला जीन बाहर निकाल उसे अरहर के पौधे

भारतीय संस्कृति में व्रत–त्यौहार का खासा महत्व है। इस मौके पर हम कुट्टू, सिंघाड़ा, संवा, चौलाई जैसे खाद्य सहज खा लेते हैं। अगर इन्हें नियमित आहार में भी जगह दी जाए तो न केवल अतिरिक्त पौष्टिकता मिलेगी बल्कि गेहूं–चावल पर जोर भी घटेगा।

में डाल दिया । जीन ने अरहर की कोशिकाओं में पहुंचते ही चमक दिखाई। इससे यह बात सहज ही पता चली कि पौधे में परिपक्वता कब आएगी। डा. शर्मा हालांकि अब अवकाश प्राप्त कर चुके हैं, मगर उनकी टोली आगे की कड़ियां जोड़ने में लगी है।

पराजीनी पद्धति के सहारे सुपर फसलें बनाने में सफलता मिलेगी, इस बात का रोचक और महत्वपूर्ण उदाहरण पिछले दिनों अपने ही देश में मिला है। यह करिश्मा दिखाया है जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय के कृषि वैज्ञानिकों ने। यहां के कुलपति डा. आशीष दत्त और उनके सहयोगियों ने रामदाने में से प्रोटीन बनाने वाला जीन निकाल उसे आलू में पहुंचा दिया। ज्ञात हो कि रामदाना जंगली खाद्य है और प्रोटीन की मात्रा इसमें अपेक्षाकृत बेहद अधिक है। आलू में रामदाने का यह प्रोटीन जीन पहुंच उसे सुपर आलू बना रहा है। परीक्षण जारी है। आने वाले दिनों में फलों की पौष्टिकता का घाटा खुद पौधे ही बताएंगे। किस पौधे में कौन सा पोषक तत्व कम है, किसान जान लेगा। इसका एक रोचक उदाहरण ब्रिटेन के कृषि वैज्ञानिकों ने प्रस्तुत किया है। हुआ यों कि जेली फिश के शरीर से नीली रोशनी पैदा करने वाली एक जीन निकाला गया। प्रयोगशाला के परीक्षणों में यह जीन आलू और तम्बाकू के पौधों में पहुंचा दिया गया। पौधों ने इसे कबूल फरमाया। परीक्षणों में पाया गया कि जब इन पौधों में खाद पानी की कमी हुई तो पौधों से नीली रोशनी छनकर आने लगी। अजीब सा समा था खेत का। घुप अंधेरे में पौधे चमक रहे थे। इस सफलता ने पौधों के दुख–दर्द समझने का रास्ता तो खोला ही है साथ ही उसे समय रहते और भी अधिक पौष्टिक बनाने की राह दिखाई है। कल का भोजन जब थाली में पहुंचेगा तो उसमें पोषक तत्व पहले की अपेक्षा ज्यादा बढ़कर पहुंचेंगे। यही नहीं, उपेक्षित फसलें भी कल लोकप्रिय होंगी।

वनस्पति जगत की इस क्रांति के लिए जंतु जगत की तरफ भी देखना होगा। जो पौधे किसी भी प्रयास से प्रोटीन–बहुल नहीं हो पाएंगे और अपनी कमी की चीख–पुकार करेंगे, उन्हें जंतु प्रोटीन से नवाजा जाएगा। आज अगर सोयाबीन को ही लें तो यह खाद्य के रूप में तेल और दाल दोनों की कमी पूरी करता है। इतना ही नहीं, दूध देकर यह श्वेत क्रांति में भी हाथ बंटा रहा है। अब अगर जीन के कमाल से बना मार्कर यानी अंदर की कमी की खबर देने वाला हमारा यह हरकारा हमें विभिन्न फलों के उन गूढ़ रहस्यों की भी भनक दे दे जिनकी हमें जानकारी नहीं तो क्या हम भी कुछ नया नहीं कर दिखा पाएंगे? काड लीवर आयल यानी मछली का तेल खाने और मलने दोनों के लिए मुफीद माना गया है। कल यही तेल अगर किसी खाद्य फसल से मिलने लगे तो क्या हैरानी? राजमा का पौधा खबर दे कि उसमें अभी और प्रोटीन की गुंजाइश है तो जंतु प्रोटीन पहुंचा दीजिए। वैज्ञानिकों का कहना है कि जंतु जगत में कितने ही जीव ऐसे हैं जिन्हें मानव किसी भी रूप में प्रयोग नहीं करता है। मसलन कीट पतंगों का एक बड़ा समुदाय प्रोटीन बहुल है, मगर नुकसानदायक है। जब पौधा मार्कर द्वारा किसी पोषक तत्व की लगातार कमी

एक वैज्ञानिक आकलन के अनुसार कटाई के बाद खेत से खलिहान और फिर भंडार तक लाते–लाते 2.75 प्रतिशत अनाज बरबाद हो जाता है। संग्रहित अनाज को 9.33 प्रतिशत कीड़ों, 2.4 प्रतिशत चूहों, 0.85 प्रतिशत पक्षियों और 0.6 प्रतिशत नमी से क्षति पहुंचती है। इस तरह से हमारे देश में अनुमानतः 25 लाख टन अनाज बरबाद हो जाता है। अनाज को अगर केवल कीड़ों से ही बचा लिया जाए तो इससे बची मात्रा डेढ़ करोड़ व्यक्तियों को एक साल तक भोजन कराने के लिए पर्याप्त होगी।

बताए तो उसे मौका–ए–मांग आपूर्ति कर दी जाए। अंडे की सफेदी को ही लीजिए इसकी सफेदी में प्रोटीन का मिश्रण है। दिल के मरीज पूरा अंडा खाने से घबराते हैं। आने वाले कल में अंडे की प्रोटीन किसी भी लोकप्रिय खाद्य फसल में पहुंचाई जाएगी और एक में दो का मजा मिलेगा। संभव है तब कि आहार के रूप ही बदल जाएं।

माना यह प्रकृति के साथ छेड़छाड़ है, मगर हम यह क्यों भूल जाते हैं कि हमने प्रकृति से हर चीज ज्यों की त्यों तो नहीं अपनाई है। प्रकृति ने भी हमें उनके गूढ़ रहस्यों से पर्दा हटाने के लिए प्रेरित किया है। अगर हम प्रकृति से छेड़छाड़ नहीं करते तो शायद यह ब्रह्मांड इतना खूबसूरत न बन पाता। यह धरती इतनी सज–संवर न पाती। माना हमारी नादानी ने हमारा कुनबा बढ़ाया है और हमने इसके लिए धरती का दोहन किया है, मगर अब हमें पेट भरने के लिए इसी प्रकृति की देन में कतर–ब्योंत करने होंगे वरना हम अपना अस्तित्व ही खो देंगे। ❑

प्रधान संपादक एवं इंचार्ज इलेक्ट्रानिक मीडिया
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
603, कृषि अनुसंधान भवन, पूसा, नई दिल्ली।

हमसब बन सकते हैं पानीदार

राजेन्द्र सिंह*

हमसब वर्षा की बूंदों को सहेजकर पानीदार बन सकते हैं। प्रकृति ने हमें सब कुछ दिया है – राजस्थान में है देश का 10 प्रतिशत क्षेत्रफल, एक प्रतिशत वर्षा तथा चार प्रतिशत जनसंख्या, हमारे समाज की पानी की कम खपत वाली जीवन शैली और पानी की कम खपत वाला फसल चक्र। हम अपनी श्रमनिष्ठा से वर्षा की बूंदों को सहेजकर अपना जीवन चलाते थे। इन बूंदों से ही "सिमट–सिमट जल भरहिं तलावा"। इन तालाबों को बनाने वाले भले ही कोई राजा–साधु, संन्यासी–सेठ–गरीब – कोई भी हों, उस तालाब को समाज तो कृतज्ञतावस महाराजा या महात्मा वाला तालाब कहकर ही सम्बोधित करता था। इन तालाबों से गांवों–शहरों के नामकरण तक होते थे। ये सबकी मदद से ही बनते और सबके काम आते हैं। यहां से सूरज भी पानी नहीं चुराता है। ऐसे तालाब से गांव तीर्थ बन जाता है। कई जगह तो तालाब को "तीर्थ" बोलते भी हैं। ऐसे नए तीर्थ बहुत बन रहे हैं। समाज स्वयं बना रहा है। स्वैच्छिक संस्थाएं भी ऐसे नए तीर्थ बनाने में मदद करती रही हैं। इनमें संस्था, सरकार और समाज सब जुड़े तभी यह सम्भव हुआ है। लेकिन इस काम को आज और अधिक तेजी से करने की जरूरत है।

आज सक्षम परिवार अपनी कमाई से एक तालाब बनाने हेतु एक गांव को आर्थिक मदद दें। अकाल से दुःखी व त्रस्त गांव इस आर्थिक मदद से अपने गांव में तालाब बनाकर उसके उत्पादन से अपनी गुजर–बसर करें। मानसून में तालाब भरेगा, तालाब के जल से धरती का

* अध्यक्ष तरुण भारत संघ, अलवर (राज.), मैगसेसे पुरस्कार से सम्मानित

पेट भरेगा, कुओं में पानी आएगा। इस पानी से खेती बढ़ेगी, हरियाली छाएगी और धीरे–धीरे गांव अकालमुक्त बन जाएगा। यह केवल कल्पना नहीं है, ऐसा करके अभी तक राजस्थान के अलवर में भावंता, गोपालपुरा, जयपुर में नीम्बी, करौली में जोगपुरा जैसे सैकड़ों गांव अकाल–मुक्त बने हैं।

इस प्रकार के काम में बहुत से दूर के परिवारों ने भी आर्थिक मदद दी है। पहली मदद दिल्ली के आर.एन. मल्होत्रा, सुमन प्रकाशन ने बानसूर तहसील के गांव गूढ़ा–कल्याणपुरा में एक तालाब बनाकर की। जसवंत राय, पी.के. राजगढ़िया ने भी एक–एक तालाब बनवाकर मदद की है। और भी बहुत से लोगों ने इस कार्य में सहयोग दिया है। इसी प्रकार सूखा व अकाल प्रभावित प्रत्येक गांव में एक तालाब बनाने वास्ते सक्षम और समृद्ध परिवार आर्थिक मदद दें। तालाब वास्ते सब मिलकर आगे आएं। गांव संगठित होकर, इस आर्थिक मदद को प्राप्त करके उससे रोजी–रोटी प्राप्त करें। साथ ही गांववासी भी अपना कुछ श्रमदान दें। ऐसा करने से गांव की एकता बनेगी। गांव में काम करने की ताकत आएगी। गांव में स्वावलम्बन बढ़ेगा।

मानसून में तालाब भरेगा, तालाब के जल से धरती का पेट भरेगा, कुओं में पानी आएगा। इस पानी से खेती बढ़ेगी, हरियाली छाएगी और धीरे–धीरे गांव अकालमुक्त बन जाएगा। यह केवल कल्पना नहीं है, ऐसा करके अभी तक राजस्थान के अलवर में भावंता, गोपालपुरा, जयपुर में नीम्बी, करौली में जोगपुरा जैसे सैकड़ों गांव अकालमुक्त बने हैं।

तालाब बनाने में मदद करने वालों को कृतज्ञ समाज अमर बना देगा।

ऐसी योजना से अलवर–जयपुर–करौली आदि में हुए कार्यों को देखने–समझने के लिए पिछले दिनों देशभर के बड़े उद्योगपतियों ने अलवर के उन क्षेत्रों का भ्रमण किया जिनमें इस योजना के प्रत्यक्ष लाभ और प्रभाव अब दिखाई दे रहे हैं। इसे गजानंद खेतान, दिल्ली, वी.डी. सुरेका, कोलकाता और अमला रुईया मुम्बई से देखने आए थे। उन्होंने इस काम की प्रशंसा की है। इस कार्य में ये भी आर्थिक मदद करने लगे हैं। अमला रुईया ने पांच तालाब बनाने की मदद दी है। इनकी मदद से जयपुर के नायला गांव सहित अन्य कई गांवों में ऐसे तालाब बन चुके हैं।

राजस्थान के प्रवासी उद्योगपति इस कार्य में अब तेजी से आगे आ रहे हैं। प्रेम का अर्थ "सबको गले से लगाते चलो, प्रेम की गंगा बहाते चलो" है। महावीर जी ने तो सब पेड़–पौधे, जीव–जंतु, पशु–पक्षियों को भी गले लगाया था। वे अपनी प्रेम–शक्ति में सबको समेट कर रखते थे। इन सबसे प्रभावित लोग अपनी संग्रह की हुई सम्पत्ति में से समाज के गरीबों को प्रेमपूर्वक तालाब बनवाने हेतु कुछ देकर उनके गौरवशाली इतिहास को दोहराने लगे हैं। जीव–दया पानी के काम से ही शुरू होती है। इस कार्य से बहुत से गांव जीव–दया के उदाहरण बन गए हैं। जैसे समरा में तो मछली भी नहीं मारने देते हैं।

भगवान महावीर के प्रति भक्ति रखने वाले

भक्तों ने भगवान महावीरजी की प्रतिष्ठा में बहुत बड़े–बड़े मंदिर समय–समय पर बनाए। कुछ मंदिर तो दुनिया के आश्चर्य माने जा सकते हैं। जैसे दिलवाड़ा जैन मंदिर (माउंट आबू), रणकपुर मंदिर (उदयपुर)। ये जब बने थे, तब इनकी जरूरत थी, लेकिन वह अब पूरी हो गई है। अब और मंदिर बनाने की जरूरत नहीं है। लोगों के दिलों को मंदिर मानकर उनको जोड़ने की जरूरत है। आज ये ही टूट रहे हैं। इन टूटते मनों को भगवान महावीर की बगिया मान सकते हैं? सूनी पड़ी जीवन की बगिया में भगवान महावीर के नाम की मीठी खुशबू भर सकते हैं? यह जल से ही भरी जा सकती है। इसी से हरियाली फैलाई जा सकती है। जल से ही नया जीवन और अहिंसक जीवन–पद्धति बनाई जा सकती है।

भगवान महावीर की जीवन–पद्धति पर्यावरण प्रेम के लिए दुनियाभर में अद्वितीय है। उनके बताए रास्ते पर चलकर हम आज के पर्यावरण संकट से मुक्त हो सकते हैं। उन्होंने जल उपयोग की जो विधि अपनाई थी, वह आज भी ग्रामीण क्षेत्रों के लिए खरी है। उनके प्रति सच्चा प्रेम तभी होगा जब गरीबों के प्रति अमीर की आंखों में पानी और गरीब के हृदय में अमीर के लिए पानी हो। ऐसा करके हम भारत देश को पानीदार बना सकते हैं। इस प्रकार हमारे गांव और शहर दोनों ही पानीदार बन सकते हैं।

समाज में घटते विश्वास तथा सरकार से टूटती आस्था के संकट में अब एकमात्र उपाय बचा है कि हम अपनी जिम्मेदारी को समझें और संगठित होकर अपने साझे जल संसाधन के प्रबंधन में लगें। जगह–जगह ग्राम स्तर, मोहल्ले के स्तर पर पानीदार समितियां बनें। ये समितियां संकल्प लें – ये अपनी एक बूंद भी व्यर्थ नहीं बहने देंगी। इस हेतु घर और गांव की अलग–अलग योजनाएं बनें। घर, छत और भूतल पर जल संरक्षण कार्य शुरू करने के लिए घर में कुण्ड बना सकते हैं। गांव के जल संरक्षण हेतु जोहड़, नालाबंध, झालरा, कुण्ड, रिचार्ज टैंक आदि बना सकते हैं। उक्त सारे काम सामुदायिक तौर पर तथा निजी तौर पर भी किए जा सकते हैं।

जल का निजीकरण खतरनाक है। परंतु

भारतीय समाज को पानीदार बनाने का एकमात्र उपाय है पूरा समाज अपनी सम्पूर्ण क्षमताओं से जल सहेजने में लग जाए। जिसके पास धन है वह धन लगाए, जिसके पास श्रम है वह श्रम लगाए। जो मन, मानस, समझ और ज्ञान लगा सकते हैं वे भी इस काम में लगें।

समुदाय हित में इसका समुदायीकरण करके सबको जल दिया जा सकता है। इस विचार से किया गया कार्य जीवन के लिए शुभ और लाभकारी होगा। कर्त्ता–धर्ता सब कुछ समुदाय बन जाएगा। पानी सबके लिए है, यह सबको ही चाहिए। इसलिए यह सबको ही संचय करना पड़ेगा तभी सबको मिलेगा। व्यक्ति या सरकार पानी की मालिक नहीं बन सकती।

सबको पानी पिलाने वाली जल नीति बनाने वालों का दिमाग साफ होना जरूरी है। सरकार समाज को जल संरक्षण विधियों तथा संरक्षण की निर्णय प्रक्रिया को आदरपूर्वक स्थान व अवसर दे। हमने भारत सरकार को एक ऐसी ही जलनीति का प्रारूप बनाकर दिया है। यह प्रारूप सरकार द्वारा मान लिया जाएगा, ऐसा आश्वासन भी हमें मिला है। फिर भी हमारे जल सहेजने वाले समाज को इसका पूरा ध्यान रखना पड़ेगा। तालाब बनाने के कार्य में कोई नीति, कानून बाधक नहीं बने। बाधक कानून बदलवाने जरूरी हैं।

भारतीय समाज को पानीदार बनाने का एकमात्र उपाय है पूरा समाज अपनी सम्पूर्ण क्षमताओं से जल सहेजने में लग जाए। जिसके पास धन है वह धन लगाए, जिसके पास श्रम है वह श्रम लगाए। जो मन, मानस, समझ और ज्ञान लगा सकते हैं वे भी इस काम में लगें। युवा–विद्यार्थी श्रमदान करें। बुजुर्ग श्रमदान स्थल पर पहुंचकर युवाओं को शाबासी दें, समझ दें। अपनापन और प्यार बांटें। युवाओं को प्यार और विश्वास मिलने लगे तो बहुत कुछ करने के लिए तैयार हो जाते हैं।

अन्याय, अत्याचार, असमानता मिटाने का काम नारेबाजी से नहीं होता है। बल्कि यह तो अधिकार मांगने के स्थान पर कर्त्तव्य पूरा करने से ही होता है। प्रकृति के प्रति हमारी कृतज्ञता का हमें ध्यान रहे तो हम अपने उद्योगों में पानी उपयोग करने से पहले यह सोचेंगे कि हम जिस साझे पानी का उपयोग करके लाभ कमा रहे हैं, उस लाभ को सबके शुभ हेतु लगाएं। सबका शुभ इसमें है कि जितना पानी लिया था, प्रदूषित किया, उतना ही पानी हम शुद्ध करके सीधा प्रकृति को दें। या फिर उतने पानी को सहेजने हेतु तालाब–जोहड़–बांध आदि बनाने के लिए किसानों या समाज के अन्य हिस्सों की मदद करें। जिस दिन प्राकृतिक संसाधनों पर समान अधिकार को मान्यता देकर हमारा "सक्षम समाज" साक्षी–समान अधिकार वाली शुभ नीति को मानकर व्यवहार करेगा, तो गरीब भी सक्षम बनने लगेगा। वह गरीब जिसके पास आज पीने का पानी तक नहीं है, वह भी क्रास्का गांव की तरह पानीदार बन जाएगा।

जब हम शुभ के लिए काम शुरू करेंगे, तभी सबको अन्न और पानी मिलेगा। सक्षम केवल लाभ के लिए काम करता है, तो बहुत बड़े लेकिन कमजोर, गरीब वर्ग का अशुभ होता है। उसकी रोजी–रोटी, पानी तक छिनता जाता है। इसीलिए हमारे यहां लाभ और शुभ दोनों साथ–साथ चलते थे। सबसे पहले तो सबके लिए शुभ क्या है, इसका विचार करके उद्योग किया जाए तो फिर किसी भी उद्योग से सबको लाभ ही होगा। किसी का पानी कम नहीं पड़ेगा। प्रदूषित नहीं होगा। इक्कीसवीं सदी प्रकृति के शोषण से नहीं, समरसता और सहअस्तित्व से ही सुखी समृद्ध बन सकती है। अभी तक इसका शोषण करके हमने अपना जीवन चलाया। यह आगे ऐसे नहीं चल सकता। आगे तो परस्पर स्वावलम्बन से ही हमारा जीवन चलने वाला है। परस्पर स्वावलम्बन ही सबको रोजी–रोटी देगा। इसी जीवन–पद्धति से हम सब पानीदार बनेंगे। ❑

तरुण भारत संघ,
भीकमपुरा, अलवर–301022 (राजस्थान)

महिला विकास योजनाएं और उनका क्रियान्वयन

डा. ललित लड्डा

किसी भी समाज का सर्वांगीण विकास तभी संभव हो सकता है जब उसमें महिलाओं की बराबर की भागीदारी हो। भारतीय समाज में महिलाओं की जनसंख्या कुल आबादी की लगभग आधी (48.10 प्रतिशत) है। इसलिए महिलाओं को विकास की प्रक्रिया में भागीदारी दिए बिना देश की समृद्धि और विकास की परिकल्पना करना नितांत अव्यावहारिक होगा। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय सरकार ने महिलाओं के विकास को सर्वाधिक प्राथमिकता देते हुए शिक्षा, स्वास्थ्य तथा चिकित्सा और सामाजिक–आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के लिए विभिन्न योजनाओं एवं कार्यक्रमों को चलाया। 'डायरेक्टरी आफ मेजर स्कीम एंड प्रोग्राम फार एम्पावरमेंट आफ वीमेन' के अनुसार महिलाओं के आर्थिक–सामाजिक विकास के लिए लगभग 100 योजनाएं विभिन्न मंत्रालयों एवं विभागों द्वारा संचालित की जा रही हैं। महिलाओं के विकास के लिए स्वयंसेवी संस्थाएं भी राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सरकार के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्यरत हैं। वर्तमान में लगभग 8,610 गैर सरकारी संस्थाएं देश के विभिन्न राज्यों में क्षेत्रीय और सामाजिक–आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण योगदान कर रही हैं। देश में सर्वाधिक 848 महाराष्ट्र में, तत्पश्चात उत्तर–प्रदेश में 750, उड़ीसा में 700, तमिलनाडु में 631 और राजस्थान में 248 स्वयंसेवी संस्थाएं कई वर्षों से कार्यरत हैं।

इस प्रकार महिला विकास के लिए केंद्र सरकार और राज्य सरकारों के साथ–साथ गैर सरकारी संस्थाएं भी निरंतर अग्रसर हैं।

जनसंख्या और लिंग अनुपात

1951 की जनगणना के अनुसार महिलाओं की कुल जनसंख्या 48.62 प्रतिशत तथा लिंग अनुपात (1000 पुरुषों पर) 946 थी। 1991 में आकर महिलाओं की कुल जनसंख्या 48.10 प्रतिशत तथा लिंग अनुपात प्रत्येक 1000 पुरुष पर 927 महिला हो गया है। इस प्रकार महिलाओं की जनसंख्या में कमी आई है।

सारणी–1

महिलाओं की जनसंख्या और लिंग अनुपात

वर्ष	कुल जनसंख्या का प्रतिशत	लिंग अनुपात 1000 पुरुषों पर
1951	48.62	946
1961	48.47	941
1971	48.17	930
1981	48.29	934
1991	48.10	927

सारणी–2

महिलाओं में साक्षरता दर

वर्ष	साक्षरता दर
1961	18.69
1971	29.85
1981	39.29
1991	50.00
2001	54.16

उपरोक्त सारणी–2 के अनुसार महिलाओं की साक्षरता दर 1961 की जनगणना के अनुसार 18.69 प्रतिशत थी जो 2001 की जनगणना में बढ़कर 54.16 प्रतिशत हो गई। अर्थात् महिलाओं में साक्षरता दर में वृद्धि तो हुई है लेकिन यह वृद्धि पर्याप्त नहीं है। इसलिए जबतक प्रत्येक महिला साक्षर न हो जाए तबतक महिलाएं देश के विकास की मुख्यधारा में शामिल नहीं हो सकती हैं। अतः महिलाओं के बीच शिक्षा विकास के लिए महत्वपूर्ण एवं उपयोगी कदम उठाना अति आवश्यक है।

डा. जास्मिन लारेंस द्वारा मध्य प्रदेश के छिंदवाड़ा जिले में किए गए शोध के अनुसार, अधिकांश महिलाएं फैक्ट्री, खदान, कृषि एवं घरों में कार्यरत हैं। इनमें अधिकतर अशिक्षित होने के कारण आर्थिक शोषण झेलती हैं, अर्थात इनको कम मजदूरी दी जा रही है। इससे इनकी स्थिति और अधिक दयनीय हो जाती है। लेकिन इनमें से जो परिवार शिक्षित हैं वे जागरूक होने के कारण विकास योजनाओं और कार्यक्रमों का लाभ उठा रहे हैं। इससे उनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है।

डा. सविता नागर के शोध अध्ययन के अनुसार उच्च–शिक्षा प्राप्त महिलाएं अपनी आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए ही कार्यालयों में काम करती हैं। विवाहित महिलाएं अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए अपने पति की सहमति पाकर नौकरी करती हैं। इनमें से अधिकतर महिलाएं अपनी पदोन्नति को अपने पारिवारिक कारणों से छोड़ देती हैं। लेकिन काम की दृष्टि से महिलाएं पुरुषों से अधिक कार्यभार अनुभव करती हैं, और कार्यस्थल पर अधिकतर महिलाएं उनके प्रति बरते जाने वाले भेदभाव को महसूस करती हैं। अर्थात प्रबंधकारी पदों पर कार्य करने वाली महिलाओं से अधिक गैर प्रबंधकीय पदों पर कार्य करने वाली महिलाएं पुरुष अधिकारी एवं सहयोगियों के भेदभाव को महसूस करती हैं। इस प्रकार विभिन्न कार्यालयों में महिलाओं के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जाता है और यह भेदभाव अनौपचारिक और गुप्त होता है। अतः इसे समाप्त करना कठिन है।

राष्ट्रीय महिला आयोग की 'अनुसूचित जनजाति की महिलाओं में शिक्षा का विकास' विषय पर रिपोर्ट के अनुसार जनजाति

उपयोजना में शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए जिन नीतियों, योजनाओं और कार्यक्रमों को क्रियान्वित किया गया है, वे संतोषप्रद नहीं हैं। जनजातीय महिलाओं में शिक्षा के विकास में जो गति आनी चाहिए वह नहीं आ सकी है। इसलिए जनजातियों में शिक्षा के विकास में प्रगति लाने के लिए शिक्षा का माध्यम जनजातीय भाषा में करने, शिक्षित जनजाति महिलाओं को गैर–जनजाति क्षेत्रों के अनुरूप शिक्षाधिकारी, पुलिस अधिकारी, पोस्टमास्टर आदि विभिन्न पदों पर नियुक्ति देकर जनजातीय समुदाय में शिक्षा और जागरूकता लाने में महत्वपूर्ण योगदान किया जा सकता है।

श्रीनिवास मिश्र के आलेख 'भारतीय महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक स्थिति' के अनुसार स्वतंत्रता के समय महिलाओं की साक्षरता दर 8.86 प्रतिशत थी। शैक्षिक विकास के लिए चलाई गई योजनाओं एवं कार्यक्रमों के फलस्वरूप महिलाओं में साक्षरता दर 1981 में 29.85 प्रतिशत, 1991 में 39.29 प्रतिशत तथा 2001 में 54.16 प्रतिशत हो गई। लेकिन भारतीय समाज के दलित और पिछड़ा वर्ग, अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति की महिलाओं में साक्षरता दर 1991 में क्रमशः 23.73 प्रतिशत तथा 18.19 प्रतिशत ही हो पाई थी। साक्षरता दर में यह जो वृद्धि हुई है वह कन्याशालाओं की स्थापना, शिक्षिकाओं की संख्या में वृद्धि और न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के अंतर्गत चौदह वर्ष तक की बालिकाओं को शिक्षित करने की योजना आदि विभिन्न योजनाओं के क्रियान्वयन के कारण बढ़ी है। उच्च शिक्षा में शहरी क्षेत्रों में ही आंशिक परिवर्तन देखा गया है। लेकिन व्यावसायिक कृषि, चिकित्सा, अभियांत्रिकी आदि विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व लगभग नगण्य सा है।

शिशु जन्म एवं मृत्युदर

कई विकसित देशों में 1000 शिशुओं के जन्म पर मृत्युदर केवल 10 है जबकि भारत में 1981, जनगणना के अनुसार शिशु मृत्युदर 114 थी और जो 1991 में 91 तक आ गई। यह विकसित देशों की तुलना में बहुत अधिक है। इसलिए सरकार ने छठी और सातवीं पंचवर्षीय योजना में इसे राष्ट्रीय स्तर का कार्यक्रम घोषित कर सन् 2000 के अंत तक भारत की शिशु मृत्युदर 60 तक लाने का संकल्प किया है। इसके लिए शिक्षा के औपचारिक और अनौपचारिक माध्यमों, जनसंचार माध्यमों तथा स्वास्थ्य प्रचार माध्यमों का समुचित उपयोग कर जनसाधारण में शिशु मृत्युदर से संबंधित विविध जानकारियों को पहुंचा कर इस समस्या को कम करने का प्रयास किए जाने पर जोर दिया गया है।

भारत में सर्वाधिक प्रति लाख 707 महिलाओं की मृत्यु प्रसव के दौरान होती है। राजस्थान पत्रिका में छपे आलेख के अनुसार, राजस्थान में 677, मध्यप्रदेश में 498, बिहार में 451, उड़ीसा में 361, पश्चिम बंगाल में 264, तथा गुजरात में सबसे कम 29 महिलाओं की मौत प्रसव के दौरान होती है। इसके लिए निरक्षरता, आर्थिक निर्भरता, स्वास्थ्य सेवाओं में कमी तथा अस्पतालों की कमी प्रमुख कारण हैं। ग्रामीण स्थानों पर प्रसव के दौरान महिलाओं में अधिक मृत्यु होने का प्रमुख कारण सामान्यतया अशिक्षित दाइयों द्वारा प्रसव कराना है।

श्रमबल सहभागिता दर

भारत में महिलाओं की स्थिति समय–समय पर बदलती रही है। अर्थात सुधारवादी आंदोलनों और सरकारी प्रयासों के कारण महिलाओं की स्थिति में काफी परिवर्तन हुए हैं। आज की

महिलाएं विश्व सुंदरी का सम्मान पाने से लेकर, प्रधानमंत्री बनने तक का अवसर प्राप्त कर चुकी हैं। लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाएं इस प्रकार के परिवर्तनों से कोसों दूर हैं।

सारणी–3

श्रमबल सहभागिता दर

(प्रतिशत में)

वर्ष	ग्रामीण क्षेत्र		शहरी क्षेत्र	
	महिला	पुरुष	महिला	पुरुष
1972–73	32.1	55.1	14.2	52.1
1977–78	34.5	56.5	18.3	54.3
1983	34.2	55.5	15.9	54.0
1987–88	33.1	54.9	16.2	53.4
1993–94	33.0	56.1	16.2	53.3
1995–96	29.7	55.8	12.8	54.6
1998	26.7	55.1	12.2	53.6

स्रोत : नेशनल सेम्पल सर्वे आर्गनाइजेशन, नई दिल्ली।

महिलाओं का शोषण

महिलाओं का आर्थिक विकास के साथ–साथ सामाजिक विकास होना भी अति आवश्यक है। क्योंकि जिस समाज में महिलाओं पर अत्याचार और शोषण की घटनाएं अधिक होती हैं, वह समाज कभी भी उन्नति की ओर अग्रसर नहीं हो सकता। इसलिए महिलाओं को सामाजिक तथा आर्थिक दोनों ही क्षेत्रों में बिना भेदभाव एवं अत्याचार–शोषण के विकास की मुख्यधारा में लाना चाहिए। लेकिन संवैधानिक अधिकारों और कानूनों की जानकारी होने के बावजूद अधिकांश महिलाएं शोषण तथा अत्याचार सहन करती हैं। इससे दिनों–दिन उन पर अत्याचार बढ़ता जा रहा है।

महिलाओं पर होने वाले अपराध

महिला आयोग ने दिल्ली विश्वविद्यालय की दो सौ लड़कियों पर एक अध्ययन कराया जिससे यह पता चला कि 91.7 प्रतिशत लड़कियां कैम्पस में यौन उत्पीड़न का शिकार बनी हैं। शिक्षित लड़कियों के साथ दिल्ली जैसे शहर में इतनी अधिक संख्या में यौन उत्पीड़न से संबंधित अपराध का होना भारतीय समाज और प्रशासन पर प्रश्नचिह्न लगाता है। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों का अंदाजा लगाया जा सकता है।

विकास योजनाएं

महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के लिए विभिन्न विकास योजनाएं और कार्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं। इनमें महिला जागृति योजना, समन्वित विकास योजना, महिला समृद्धि योजना, ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम, अपनी बेटी अपना धन योजना, ग्रामीण विकास और शक्ति सम्पन्नता आदि मुख्य कार्यक्रम एवं योजनाएं हैं। इन योजनाओं के क्रियान्वयन की सार्थकता के बारे में अलग–अलग धारणाएं हैं। राष्ट्रीय महिला आयोग की रिपोर्ट 'अनुसूचित जाति की महिलाओं का सामाजिक–आर्थिक विकास' के अनुसार आजादी के 53 वर्षों के बाद भी अनुसूचित जाति की महिलाओं की स्थिति दयनीय बनी हुई है। इनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति में कोई विशेष बदलाव नहीं आया है। इसके लिए रिपोर्ट में क्रियान्वयन में त्रुटि होने को स्वीकार किया है। इसके अलावा इस रिपोर्ट में महिला विकास के लिए स्वयंसेवी संस्थाओं को आगे आने का सुझाव दिया गया है। आर्थिक मुक्ति और आय सृजन को घर–घर तक पहुंचाने के लिए एससीडीसी को अपनी महत्वपूर्ण एवं उपयोगी भूमिका निभाने का भी सुझाव दिया गया है, जिससे ग्रामीण स्तर पर महिला समूहों की सूचना, निवेश और मार्गदर्शन देकर सहायता की जा सके तथा ऋण, कच्चे माल और विपणन की सुविधाएं उपलब्ध कराकर उनकी उद्यमता में संगठनात्मक एवं प्रबंधकीय क्षमताओं के विकास के लिए प्रशिक्षण का भी प्रबंध करना है। समय–समय पर उनकी विभिन्न योजनाओं के क्रियान्वयन पर निगरानी रखनी चाहिए।

इस प्रकार विभिन्न अध्ययनों के आधार पर निम्नलिखित महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त होते हैं:

- संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद महिलाओं को शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार निर्णय की प्रक्रिया में संसाधनों के वितरण में समान अवसर प्राप्त नहीं होते।
- महिला विकास हेतु जिन विभिन्न योजनाओं और कार्यक्रमों का क्रियान्वयन किया जा रहा है, उनके संतोषप्रद परिणाम प्राप्त नहीं हो रहे हैं, इसलिए उनके प्रचार–प्रसार हेतु विभिन्न स्वयंसेवी संस्थानों को आगे लाना चाहिए तथा समय–समय पर विकास कार्यक्रमों का मूल्यांकन किया जाना चाहिए।
- अधिकांश महिलाओं के अशिक्षित होने के कारण इनका आर्थिक और शारीरिक शोषण किया जा रहा है, इसलिए शिक्षा का तीव्र गति से प्रचार एवं प्रसार करना चाहिए।
- ग्रामीण महिलाओं के विकास हेतु स्वरोजगार योजना को प्रोत्साहित करना चाहिए।

महिलाओं के विकास के लिए स्वतंत्रता पश्चात केंद्रीय और राज्य सरकारों ने महत्वपूर्ण और उपयोगी कदम उठाए। लेकिन अधिकतर महिलाएं इससे वंचित रह गईं। इसलिए इन कार्यक्रमों की कार्यपद्धति तथा इनके क्रियान्वयन में आने वाली विभिन्न समस्याओं का अध्ययन करना अति आवश्यक हो जाता है। समय–समय पर महिला विकास के संदर्भ में मूल्यांकनपूरक शोध अध्ययन करते रहना चाहिए। इससे महिलाओं की वास्तविक स्थिति का पता चलता रहेगा और विकास कार्यक्रमों/योजनाओं के क्रियान्वयन में आने वाली विभिन्न समस्याओं का निराकरण करते हुए महिलाओं को विकास की मुख्यधारा में उनके सामाजिक–आर्थिक विकास के साथ सम्मिलित किया जा सकेगा। ❑

अनुसंधान अधिकारी,
जनसाधन अनुसंधान संस्थान,
आई.पी. एस्टेट, एम.जी. मार्ग,
नई दिल्ली – 110021

कुरुक्षेत्र मंगाने का पता

विज्ञापन और प्रसार व्यवस्थापक
प्रकाशन विभाग
पूर्वी खंड–4, लेवल–7
रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066

मूल्य एक प्रति	सात रुपये
वार्षिक शुल्क	70 रुपये
द्विवार्षिक	135 रुपये
त्रिवार्षिक	190 रुपये
विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)	
पड़ोसी देशों में	500 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	700 रुपये (वार्षिक)

ग्रामीण विकास के लिए शैक्षणिक कार्यक्रम समस्याएं और निदान

डा. ए.सी. जैन
अमर कुमार जैन

देश में यदि शिक्षा का आकलन किया जाए तो कक्षा एक में प्रवेश लेने वाले कुल छात्रों में से 73.41 प्रतिशत छात्र ही कक्षा दो में ले प्रवेश पाते हैं। कक्षा 8 तक तो यह संख्या घटकर 31.11 प्रतिशत रह जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि देश के 68.89 प्रतिशत छात्र बचपन में ही शिक्षा की महत्वपूर्ण दौड़ से बाहर हो जाते हैं। उड़ीसा, बिहार व आंध्र प्रदेश में तो यह स्थिति और भी गंभीर है।

ग्रामीण विकास का अभिप्राय ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले निम्न आय वर्ग के लोगों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाना और उनके विकास क्रम को आत्मपोषित करना है। यह एक ऐसी व्यूहरचना है जो ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने वाले निर्धन लोगों के आर्थिक एवं सामाजिक जीवन को उन्नत बनाने में सहयोग प्रदान करती है। भारत की लगभग 74 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है तथा उनका मुख्य व्यवसाय कृषि और उससे संबंधित कार्य है। कृषि उत्पादकता एवं शिक्षा के बीच सीधा संबंध है, अर्थात शिक्षा उत्पादकता की वृद्धि में अहम भूमिका निभाती है तथा अशिक्षा कृषि को आधुनिकीकरण तथा उच्च तकनीकों को

कक्षा में नामांकन की प्रतिशतता के रूप में कक्षा 2, 5 और 8 में नामांकन

राज्य/संघ	कक्षा 1	कक्षा 2	कक्षा 5	कक्षा 8
1	2	3	4	5
भारत	**100.00**	**73.41**	**49.28**	**31.11**
आंध्र प्रदेश	100.00	64.03	38.02	15.88
बिहार	100.00	59.50	34.47	19.82
गुजरात	100.00	73.04	50.61	30.03
हरियाणा	100.00	91.74	68.52	53.12
कर्नाटक	100.00	77.99	47.50	28.74
केरल	100.00	106.10	98.84	81.31
मध्य प्रदेश	100.00	89.97	64.14	36.70
महाराष्ट्र	100.00	77.32	54.67	34.67
उड़ीसा	100.00	80.15	47.10	27.92
पंजाब	100.00	102.31	65.15	48.82
राजस्थान	100.00	47.61	27.55	18.50
तमिलनाडु	100.00	88.53	67.79	40.79
उत्तर प्रदेश	100.00	90.44	58.57	47.31
पश्चिम बंगाल	100.00	56.34	35.15	21.90

स्रोत – पांचवीं अखिल भारतीय शिक्षा सर्वेक्षण रपट, रा.शै.प., नई दिल्ली

व्यवहार में लाने का मार्ग अवरुद्ध करती है। इस संदर्भ में मेलर का 1967 में कहा गया कथन उचित प्रतीत होता है कि वस्तुतः कृषि विकास के सभी पक्ष शैक्षिक संस्थाओं की एक व्यापक शृंखला स्थापित करने पर निर्भर करते हैं। कृषि के मामले में प्रशिक्षित मानव शक्ति श्रम और भूमि संसाधनों के दक्षतापूर्ण उपयोग में आने वाली कठिनाइयों को समाप्त कर देती है। शिक्षा कृषकों को उन्नति का एवं अपनी महत्वाकांक्षाओं को यथार्थ में बदलने का ऐसा रास्ता बतलाती है जिसका विकल्प विश्व में दूसरा हो नहीं सकता। यदि ग्रामीण क्षेत्र के कृषक शिक्षा के महत्व को अंगीकार कर लें तो ग्राम विकास की ऐसी अविरल गंगा बहेगी जिसमें अशिक्षा के समस्त दोष बह जाएंगे।

कृषि उत्पादकता में वृद्धि के लिए कृषक को नवीन प्रविधियों और कृषि शोध के संबंध में शिक्षित और जागरूक होना नितांत आवश्यक है। कृषकों के लिए माध्यमिक स्तर की सामान्य शिक्षा कृषि प्रविधियों के विकास एवं विस्तार को सार्थक बना देती है। नवीन प्रौद्योगिकी (खोज) और वर्तमान विकसित कृषि प्रविधियों के प्रयोग से उत्पादकता अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त करती है। सामान्यतः परिवर्तनों का शिक्षा से प्रत्यक्ष संबंध होता है और परिवर्तन का मार्ग शिक्षा के साथ ही चलता है। सामाजिक व सांस्कृतिक परिवर्तन को शिरोधार्य करने तथा पारम्परिक कुरीतियों की तिलांजलि देने में शिक्षा का योगदान अद्वितीय होता है। शिक्षा ग्रामीण क्षेत्र में व्याप्त कुपोषण, नवीन बीमारियों और रोगों की पहचान कर उनको समाप्त कर शिशु व उसकी मां के स्वास्थ्य व आहार के स्तर में आमूलचूल परिवर्तन करती है। इसके अतिरिक्त शिक्षा जनसंख्या वृद्धि के कारण उत्पन्न होने वाली समस्या की ओर जन सामान्य का ध्यान खींचती है जिससे एक ओर तो विवाहयोग्य आयु में वृद्धि होती है, दूसरी ओर प्रजनन दर को कम कर दो बच्चों के मध्य पर्याप्त अंतर की भावना का विकास होता है।

उपर्युक्त आवश्यकताओं के बावजूद ग्रामीण क्षेत्र शिक्षा के मामले में बहुत आगे नहीं है। यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि शिक्षा मनुष्य को अंधकार से उजाले की ओर ले जाती है। लेकिन अपनी अज्ञानतावश गांवों के निवासी इस उजाले का उतना लाभ ग्रहण नहीं कर पा रहे, जितना वांछित है।

देश में यदि शिक्षा का आकलन किया जाए तो कक्षा एक में प्रवेश लेने वाले कुल छात्रों में से 73.41 प्रतिशत छात्र ही कक्षा दो में प्रवेश ले पाते हैं। कक्षा 8 तक तो यह संख्या घटकर 31.11 प्रतिशत रह जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि देश के 68.89 प्रतिशत छात्र बचपन में ही शिक्षा की महत्वपूर्ण दौड़ से बाहर हो जाते हैं। उड़ीसा, बिहार व आंध्र प्रदेश में तो यह स्थिति और भी गंभीर है। 'वर्ल्ड समिट फार चिल्ड्रेन– 2000' के तहत प्रकाशित एक ताजा रिपोर्ट के अनुसार भारत में 14 वर्ष से कम आयु के लगभग 5.9 करोड़ बच्चे स्कूल नहीं जाते। इसमें 3.5 करोड़ लड़कियां भी शामिल हैं। भारत सहित बांग्लादेश, भूटान, मालदीव, नेपाल, पाकिस्तान और श्रीलंका ने गत 23 मई, 2001 को आयोजित 'दक्षिण एशिया में बच्चों के लिए निवेश' नामक एक सहमति पत्र पर हस्ताक्षर करके बच्चों के सर्वांगीण विकास का संकल्प लिया है।

ग्रामीण विकास के लिए शैक्षणिक कार्यक्रम

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 'विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में वांछित ग्रामीण विकास का लक्ष्य शिक्षा के द्वारा ही संभव है' इस वाक्य को योजनाकारों ने स्वीकार तो किया लेकिन इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु दृढ़ संकल्पबद्ध नहीं दिखाई दिए। ऐसी बात नहीं है कि इस विषय में कोई योजना व कार्यक्रम न बनाए गए हों लेकिन उन कार्यक्रमों से वांछित लक्ष्य कम ही प्राप्त हुए हैं। सरकारी प्रयासों में निम्न कार्यक्रम सम्मिलित हैं :

(अ) अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम

ग्रामीण क्षेत्र में प्राथमिक शिक्षा को घर–घर पहुंचाने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भारत सरकार ने कुछ विशेष व अतिरिक्त प्रयास भी किए हैं। ग्रामीण जनसंख्या वृद्धि को समझते हुए वर्ष 1979–80 से औपचारिक

शिक्षा के साथ-साथ 'अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम' भी प्रारंभ किया गया जो अपने साथ निम्न उद्देश्यों को समाहित किए था :

- 6 से 11 वर्ष तक के आयुवर्ग के उन बच्चों को शिक्षा उपलब्ध कराना जो विद्यालय नहीं जा सके या जिनके गांव में विद्यालय उपलब्ध नहीं हैं या जिन्होंने बीच में ही स्कूल छोड़ दिया हो।
- ग्रामीण क्षेत्र की कामकाजी बालिकाओं एवं श्रमिक बच्चों को औपचारिक शिक्षा के समान ही गुणवत्ता वाली शिक्षा प्रदान की जाएगी।
- प्रारंभ में यह शिक्षा शैक्षिक रूप से पिछड़े नौ राज्यों, यथा असम, आंध्र प्रदेश, बिहार, जम्मू व कश्मीर, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान और पश्चिम बंगाल में प्रारंभ की गई जहां ग्रामीण गंदी बस्तियां, और पर्वतीय जनजातियां अधिक हैं।

(ब) आपरेशन ब्लैक बोर्ड कार्यक्रम

देश की सभी प्राथमिक शालाओं में न्यूनतम आवश्यक साधन एवं सुविधाओं की पूर्ति सुनिश्चित करने के लिए वर्ष 1987–88 में इस कार्यक्रम का आगाज बुलंद हौसलों के साथ किया गया। इसके तीन महत्वपूर्ण घटक हैं जो एक दूसरे पर आश्रित हैं – यथा,

- प्रत्येक गांव में स्कूल के लिए कम से कम दो पर्याप्त बड़े कमरे हों जिनका प्रत्येक मौसम में उपयोग हो सके।
- प्रत्येक गांव में कम से कम दो अध्यापकों की व्यवस्था हो जिनमें से एक महिला हो।
- सरकार शैक्षणिक सहायक सामग्री तथा ब्लैकबोर्ड, नक्शे, चार्टों, खिलौने सहित आवश्यक अध्ययन सामग्री की व्यवस्था करना चाहती है जिससे कि माता-पिता स्वयं बच्चों को शिक्षा अर्जन के लिए स्कूल या अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों में भेजें। इस योजना के अंतर्गत कुछ राज्यों में निःशुल्क शिक्षा सुलभ कराने के अतिरिक्त मध्यान्ह भोजन, लेखन व पठन सामग्री भी उपलब्ध कराई जा रही है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण बालिकाओं को नकद प्रोत्साहन राशि दिए जाने की भी व्यवस्था है।

नवीन कार्यक्रम

1. सीखते समय कमाने की योजना

यह योजना समाज के (विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्र के) आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के छात्रों को शिक्षा के अवसर के साथ धन कमाने की बातें भी सिखलाती है। छात्र इन अनौपचारिक केन्द्रों में तब तक बने रहते हैं जब तक कि वह प्राथमिक शिक्षा समाप्त नहीं कर लेते।

इस योजना में छात्रों को शिक्षा के साथ ऐसे गुण भी सिखाए जाते हैं जिनसे छात्र कुछ समय में ही टाट-पट्टियां, चाकस्टिक, सिलिंग वैक्स, डस्टर इत्यादि बनाकर धन उपार्जन कर सकें। सरकार स्वयं ऐसे माल क्रय करके इनको सहयोग प्रदान करती है।

2. आश्रम स्कूल

ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले अनुसूचित जाति व जनजाति के अधिकांश गरीब छात्र स्कूल का मुंह तक नहीं देख पाते हैं क्योंकि इनके माता-पिता निरक्षर व साधनहीन होने से शिक्षा का महत्व समझ ही नहीं पाते। कुछ राज्यों में, जिनमें मध्य प्रदेश भी शामिल है, आश्रम स्कूल नामक योजना चलाई जा रही है। इस आश्रम स्कूल व्यवस्था का मूलाधार यह है कि छात्रों को केवल एक ही कार्य सौंपा जाय और वह है शिक्षा प्राप्त करना। इस योजना में छात्रों को आवास-व्यवस्था के साथ खाने-पीने एवं पठन-पाठन की वस्तुएं निःशुल्क प्रदान की जाती हैं।

3. पोटा प्रयोग, झारखंड

बिग्रेडियर सी.एम. जोसफ व उनके स्वयं सेवकों ने हजारीबाग, झारखंड में पोटा नामक गांव को गोद लिया तथा वहां शिक्षा-प्रसार का प्रयोग किया जो आश्चर्यजनक-रूप से सफल रहा। पोटा गांव की आबादी 2,000 थी जिनमें 95 प्रतिशत निवासी निरक्षर थे। गांव के एकमात्र स्कूल में छात्र नाममात्र को थे। कार्यकर्ताओं ने व्यक्तिगत प्रयासों के द्वारा 100 छात्रों को नामांकित किया तथा उनके स्कूल का समय मात्र 3 घंटे रखा। स्कूल में ही सिलाई, कढ़ाई व काश्तकारी इत्यादि की व्यवस्था की गई। इसमें सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि पाठ्यक्रम ग्रामीण अर्थव्यवस्था के अनुरूप तैयार किया गया जिससे छात्रों में रुचि जागृत हुई व कम समय में एक आदर्श स्कूल तैयार हो गया।

4. चरवाहा विद्यालय

बिहार में चरागाह शिक्षा स्कूल भी अपने आप में नवीन व अद्वितीय प्रयोग था। चरागाह में पशुओं को चारा चराने में लगे बच्चों के बीच जाकर शिक्षक चरागाहों में शिक्षा अर्पित कर रहे हैं। इन बच्चों में से कुछ पशु चराते

रहते हैं तथा शेष पढ़ते हैं। उसके बाद फिर पढ़ने वाले पशु चराने लगते हैं और अब तक पशु चरा रहे बच्चे पढ़ने लगते हैं।

5. नवोदय विद्यालय

ग्रामीण क्षेत्र में 75 प्रतिशत आरक्षण व्यवस्था सहित छात्र–छात्राओं को निःशुल्क एवं अच्छी शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए प्रत्येक जिले में एक नवोदय विद्यालय स्थापित किया गया। नवोदय विद्यालय आवासीय विद्यालय है जिसका लक्ष्य मुख्यरूप से ग्रामीण प्रतिभाशाली बच्चों को अच्छे स्तर की आधुनिक शिक्षा देना है।

कृषि उत्पादकता एवं शिक्षा के बीच सीधा संबंध है, अर्थात शिक्षा उत्पादकता की वृद्धि में अहम् भूमिका निभाती है तथा अशिक्षा कृषि के आधुनिकीकरण तथा उच्च तकनीकों को व्यवहार में लाने का मार्ग अवरुद्ध करती है।

शैक्षिक कार्यक्रमों का मूल्यांकन

उपर्युक्त कार्यक्रमों का एकमात्र उद्देश्य था ग्रामीण व शहरी बच्चों (विशेषकर 6 से 11 वर्ष आयु समूह के) का नामांकन स्कूल में कराकर शैक्षिक गति बनाए रखना। लेकिन वर्तमान समय में ग्रामीण क्षेत्रों से जो परिणाम आ रहे हैं वह योजना व्यय की तुलना में संतोषप्रद नहीं हैं, क्योंकि माता–पिता के शिक्षित न होने के कारण वे शिक्षा का प्रसार अपने बच्चों में नहीं करवा पाते तथा केन्द्र संचालक न्यूनतम छात्र संख्या पूरी करने के लिए अनौपचारिक केन्द्रों में उन्हीं बच्चों का नामांकन कर लेते हैं जो पहले ही स्कूलों में नामांकित हैं। सरकार के पास कोई ऐसी नामावली नहीं है जिससे यह प्रकट हो कि किसी ग्राम विशेष में कुल कितने बच्चे निरक्षर हैं। अधिकांश बच्चे शिक्षण सामग्री के मोह में स्कूल चले जाते हैं तथा सामग्री प्राप्त होते ही वहां जाना बंद कर देते हैं। सरकार योजना को जब कागज पर बनाती है तब वह सर्वश्रेष्ठ होती है और जब वह क्रियान्वित की जाती है तब दिशाहीन नजर आने लगती है।

समस्याएं

ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा का प्रसार करने के लिए नवीन प्रयोगों के साथ राजस्थान में घुमंतु जनजाति के लिए सचल विद्यालय, बिहार में चरवाहा विद्यालय, उत्तर प्रदेश में शिक्षा मित्र योजना की आधारशिला रखी गई लेकिन यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि स्वतंत्रता पश्चात पांच दशक के आंकड़े भयावह स्थिति प्रकट करते हैं। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली के छठे सर्वेक्षण में जो तथ्य सामने आए हैं वे हमारे प्रयासों व जागरूकता पर प्रश्नचिन्ह लगाते हैं। देश में केवल 50 प्रतिशत बस्तियों में 73 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। केवल इन्हीं में प्राथमिक विद्यालय हैं। शेष 50 प्रतिशत बस्तियां शिक्षा सुविधा से अछूती हैं। ग्रामीण विकास के संदर्भ में शिक्षा के विकास में अभी भी अनेक समस्याएं हैं जिनका वर्णन निम्नप्रकार है :

- कहा जाता है कि भारत में विकास कागज पर होता है, जिसको सिद्ध करने के लिए आप शैक्षणिक कक्षाओं की विद्यमानता को ले सकते हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार देश के ग्रामीण क्षेत्रों में 82 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में न्यूनतम आवश्यक कमरे तक उपलब्ध नही हैं। देश के 45 प्रतिशत विद्यालय या तो बिना भवन के चल रहे हैं या खुले मैदानों में हैं। यही स्थिति कमोबेश अध्यापकों के संबंध में है। लगभग एक तिहाई विद्यालयों में मात्र एक अध्यापक कार्यरत है। इसके अतिरिक्त 65 प्रतिशत विद्यालयों में टाट–पट्टियों, न्यूनतम आवश्यक फर्नीचर तक का अभाव है। सर्वेक्षण के अनुसार 55.5 प्रतिशत प्राथमिक विद्यालयों में पीने के पानी की समुचित व्यवस्था नहीं है।
- ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा के संबंध में एक मुख्य कठिनाई नामांकित बच्चों का बीच में ही पढ़ाई छोड़ देना है। आंकड़े इस बात के गवाह हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों में कक्षा एक से पांच तक लगभग 50 प्रतिशत तथा 6 से 8 तक 72 प्रतिशत बच्चे शिक्षा पूरी किए बिना ही स्कूल की ओर पीठ कर लेते हैं। इस प्रकार वे शत–प्रतिशत नामांकन प्राप्त कर लेने के लक्ष्य का मजाक उड़ाते हैं। नामांकन का लक्ष्य प्राप्त करने में जो सबसे बड़ी कठिनाई दृष्टिगत होती है वह है ग्रामीण क्षेत्रों में अभिभावकों का स्वयं निरक्षर होना। अशिक्षित अभिभावक शिक्षा के महत्व को नकार देते हैं।

शिक्षा कृषकों को उन्नति का तथा अपनी महत्वाकांक्षाओं को यथार्थ में बदलने का ऐसा रास्ता बतलाती है जिसका विकल्प विश्व में दूसरा हो ही नहीं सकता। यदि ग्रामीण क्षेत्र के कृषक शिक्षा के महत्व को अंगीकार कर लें तो ग्राम विकास की ऐसी अविरल गंगा बहेगी जिसमें अशिक्षा के समस्त दोष बह जाएंगे।

- ग्रामीण शिक्षा के विकास एवं विस्तार में एक बाधा यह दृष्टिगोचर हो रही है कि वर्तमान समय में जो पाठ्यक्रम उपलब्ध हैं वह ग्रामीण अर्थव्यवस्था व वातावरण से मेल नहीं खाते हैं। ग्रामीण वातावरण की कठिनाइयों को देखते हुए शिक्षक व अन्य कर्मचारी शहरों में निवास करते हैं व महीने में कुछ दिन ही विद्यालय में आते हैं। ग्रामीण पाठ्यक्रम में कृषि व उससे संबंधित जानकारी, वर्षा व मौसम की जानकारी, गोबरगैस संयंत्र आदि जैसी ग्रामोपयोगी जानकारियों का अभाव है।
- ग्रामीण शिक्षा की सर्वव्यापकता में देश में व्याप्त गरीबी और उसके दुष्परिणाम के रूप में बालमजदूरी प्रथा एक दीवार बनकर हमारे समक्ष खड़ी है। ग्रामीण क्षेत्रों में बच्चों से यह आशा की जाती है कि वे

बाल्यकाल से ही जीविका–उपार्जन में सहयोग दें। माता–पिता जब अशिक्षित होते हैं तो यह विचार और पुष्ट होता है। बाल मजदूरों से उनकी शारीरिक क्षमता से अधिक कार्य करवाया जाता है। यह भी सच्चाई है कि बच्चों को काम पर लगाने का मुख्य कारण है कि वह सस्ता आज्ञाकारी श्रमिक होता है। बाल मजदूरी करने वाले बालक के अधिकांश माता–पिता यह नहीं सोचते कि बच्चे को काम पर लगाकर उन्होंने कोई गलती की है, बल्कि यह सोचते हैं कि उस बच्चे को जो स्कूल नहीं जाता इस प्रकार काम में लगाए रखना उपयोगी है।

- ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के विकास में एक बाधा यह भी है कि जो अभिभावक शिक्षित हैं उनमें भी जन जागृति व देश के लिए शिक्षा संबंधी योगदान देने की भावना नहीं है। अगर प्रत्येक साक्षर एक निरक्षर को साक्षर बनाता तो आंकड़े शिक्षा की कोई और ही कहानी कर रहे होते। जापान व पश्चिमी देश इसी जन–जागृति का एक सूत्रीय कार्यक्रम क्रियान्वित कर साक्षरता के लक्ष्य को शत–प्रतिशत प्राप्त कर रहे हैं।
- सरकार द्वारा घोषित शिक्षा नीति में 14 वर्ष तक के बच्चों की शिक्षा निःशुल्क है, लेकिन दिल्ली स्कूल आफ इकोनोमिक्स के शोधछात्र कुछ अलग ही कहानी कहते हैं। राजस्थान, मध्य प्रदेश, बिहार और उत्तर प्रदेश के कुछ चुने हुए क्षेत्रों में प्राथमिक स्तर की शिक्षा के लिए लगभग 366 रुपये प्रतिवर्ष व्यय करने पड़ते हैं। अर्थात एक रुपया प्रतिदिन का अतिरिक्त भार उन लाखों परिवारों पर। यह आर्थिक बोझ उस समय दिक्कत में डाल देता है जब परिवार के कई बच्चे एक साथ पढ़ने निकलते हैं। अतः कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण अभिभावक केवल एक या दो बच्चों को ही शिक्षा दिलवाते हैं, बाकी आजीविका कमाने में माता–पिता की मदद करते हैं।
- भारतवर्ष में बहुत सारे गांव व उनके आस–पास के कस्बे ऐसे हैं जहां प्राथमिक शाला सुलभ नहीं हैं। यद्यपि सरकारी नीति में यह स्पष्ट है कि कक्षा एक से पांच तक के लिए प्रत्येक किलोमीटर पर व कक्षा 6 से 8 तक के लिए 3 किलोमीटर के अंदर विद्यालय उपलब्ध कराया जाय। यदि सरकारी आंकड़ों को मान लें तो भी ग्रामीण जनसंख्या के 94 प्रतिशत भाग को ही एक किलोमीटर में प्राथमिक विद्यालय तथा 84 प्रतिशत जनसंख्या को 3 किलोमीटर के भीतर मिडिल स्तर की शिक्षा सुलभ हो पाई है। इससे यह बात स्पष्ट है कि अभी भी बहुत सा ग्रामीण क्षेत्र स्कूलों से वंचित है। इस परिस्थिति में अनेक माता–पिता चाहकर भी बच्चों को शिक्षा नहीं दिला पा रहे हैं।

शिक्षा ग्रामीण क्षेत्र में व्याप्त कुपोषण, नवीन बीमारियों और रोगों की पहचान कर, उनको समाप्त कर शिशु व उसकी मां के स्वास्थ्य व आहार के स्तर में आमूलचूल परिवर्तन करती है। इसके अतिरिक्त शिक्षा जनसंख्या वृद्धि के कारण उत्पन्न होने वाली समस्या की ओर जन सामान्य का ध्यान खींचती है जिससे एक ओर तो विवाह योग्य आयु में वृद्धि होती है, दूसरी ओर प्रजनन दर को कम कर दो बच्चों के मध्य पर्याप्त अंतर की भावना का विकास होता है।

सुझाव

ग्रामीण शिक्षा के विषय में जो आंकड़े हमारे सामने आए हैं वह निश्चित रूप से चौंकाने वाले और चिन्तनीय हैं। हम 21वीं सदी में पांव धर चुके हैं और ग्राम स्वराज्य व रामराज्य का दम्भ भरने वाले लोग स्वतंत्रता के 53 वर्ष बाद भी प्राथमिक शिक्षा का शत–प्रतिशत लक्ष्य पाने से वंचित हैं। 21वीं शताब्दी में कम से कम प्राथमिक शिक्षा सभी को सहज सुलभ हो, इसके लिए कुछ दूरगामी, विद्वतापूर्ण एवं कठोर और निर्णायक कदम उठाने की महती आवश्यकता है। सरकार ने विगत पांच दशकों में ग्रामीण विकास के संदर्भ में विभिन्न शिक्षा योजनाओं पर अरबों रुपये खर्च भी किए हैं लेकिन लक्ष्य प्राप्ति मनोनुकूल नहीं रही है। अब आवश्यकता इस बात की है कि पुराने प्रयोगों, अनुभवों और योजनाओं को न दोहराकर कुछ ऐसे विशेष व कठोर प्रयास किए जाएं जिनमें असफलता की कोई गुंजाइश ही न रहे। इसके लिए निम्न सुझाव विचारणीय हैं :

- देश के सभी ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक विद्यालय और उनमें आवश्यक भौतिक संसाधनों को प्रदान करने के लिए सरकार को अपनी प्राथमिकता के आधार पर राजनीतिक व प्रशासकीय इच्छाशक्ति के द्वारा उपलब्ध कराना होगा। सरकार ग्रामीण शिक्षा को अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा, राष्ट्रीय महत्व व सामाजिक विकास और सर्वांगीण विकास के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में स्थापित करे। ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा हेतु विद्यालय एवं भौतिक संसाधन उपलब्ध कराने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत तथा समर्पित स्वयंसेवी संगठनों, निकायों व ग्रामीण पंचायतों का अनिवार्य सहयोग प्राप्त करना चाहिए। जिस प्रकार पोलियो उन्मूलन अभियान के द्वारा राष्ट्रीय चेतना पैदा की जा रही है उसी प्रकार ग्रामीण शिक्षा के संदर्भ में भी वही दृष्टिकोण अपनाना होगा। ग्रामीण शिक्षा के शत–प्रतिशत लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जवाबदेही का तत्व शामिल करना होगा और प्रशासनिक तंत्र को कागज के बजाय यथार्थ में आंकड़े प्रकट करने होंगे।
- हमारे देश के संविधान की भावना यही है कि देश के सभी बच्चों को अनिवार्य रूप से प्राथमिक शिक्षा दिलाई जाए। अनिवार्य शब्द से तात्पर्य यह है कि विकसित राष्ट्रों की तरह हमें अभिभावकों को कानून के दायरे में लाना होगा तथा ऐसे अभिभावकों को, जो अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेजते

हैं, उन पर दण्डात्मक कार्यवाही की व्यवस्था करनी होगी। लेकिन इस प्रावधान को लागू करने के पूर्व एक तो सरकार को प्रत्येक गांव में स्कूल, अध्यापक व भौतिक संसाधन उपलब्ध कराने होंगे तथा दूसरे बच्चों को स्कूल जाने के लिए आर्थिक परेशानियों को समाप्त करना होगा।

- एक सघन अभियान के रूप में शिक्षा को गांव–गांव में पहुंचाना होगा। इसके लिए आवश्यक है कि जन–जागृति, जन सहयोग और जन सहभागिता को प्राथमिकता के आधार पर तैयार करें। शासकीय एवं अशासकीय स्वयंसेवी प्रचार माध्यम इस पुनीत काम में लगने की दृढ़ इच्छाशक्ति जागृत करें। पिछले वर्षों में हालांकि कुछ प्रयास हुए हैं लेकिन श्रेष्ठ व कुशल प्रयास की अभी भी प्रतीक्षा है।
- शहरी क्षेत्रों में विशेष तबके के बच्चों की शिक्षा हेतु पब्लिक कांवेन्ट, माण्टेसरी इत्यादि के लिए तथाकथित विद्यालयों को चलाया जा रहा है तथा अभिभावकों से इसके लिए अत्यधिक शुल्क वसूला जा रहा है। चूंकि स्कूलों में अधिकांशतः एक विशेषवर्ग अथवा सम्पन्न आर्थिक स्थिति वाले परिवारों के बच्चे पंजीकृत होते हैं, अतः इन विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने वाले बच्चों के अभिभावकों को ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा के विकास के महत्व को समझाते हुए उनसे 500 से 1000 रुपये प्राप्त किए जा सकते हैं। इस प्रकार से प्राप्त धन का उपयोग ग्रामीण शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए किया जा सकता है, बशर्ते कि इस कार्यक्रम में भ्रष्टाचार रूपी दीमक प्रवेश न कर पाए।
- वर्तमान समय में जो पाठ्यक्रम ग्रामीण क्षेत्रों में पढ़ाया जाता है वह ग्रामीण विकास से तारतम्य नहीं स्थापित कर पाता है। अतः ग्रामीण पर्यावरण, वातावरण एवं आवश्यकता को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम तैयार किया जाना चाहिए। ग्रामीण पाठ्यक्रम में कृषि व उससे संबंधित विभिन्न क्षेत्रों को शामिल किया जा सकता है। चूंकि ग्रामीण विद्यार्थियों का रुझान कृषि व उन पर किए जा रहे नवीन शोध की ओर होगा और वे उन्हें सरलता से ग्राह्य होंगे, अतः ग्रामीण पर्यावरण, कृषि मौसम, उन्नत तकनीक इत्यादि ग्रामीण पाठ्यक्रम के विषय निर्धारित हो सकते हैं।
- समस्त सरकारी योजनाओं की असफलता का कारण यह है कि इनकी असफलता के प्रति व्यक्तिगत जबावदेही नहीं होती। सरकार प्रत्येक दो शिक्षकों को एक वर्ष में 100 छात्रों को साक्षर बनाने की जिम्मेदारी दे व एक वर्ष पश्चात उन 100 छात्रों का मूल्यांकन कर यह सुनिश्चित करे कि कितने छात्र साक्षर होने से रह गए हैं। यदि संख्या बहुत अधिक है तो जबावदेही उन शिक्षकों की होनी ही चाहिए।

ग्रामीण विकास और शिक्षा का गांवों में प्रवेश एक दूसरे पर आश्रित है। हमारे बाद स्वतंत्र हुए चीन ने न केवल इसके महत्व को स्वीकार किया, बल्कि शैक्षिक प्रक्रियाओं को सर्वोत्तम ढंग से क्रियान्वित करके भी दिखाया है। इसके परिणाम आज दुनिया के सामने हैं। हमारे देश में शिक्षा का महत्व इसलिए और बढ़ जाता है कि हमारी अर्थव्यवस्था ग्रामीण क्षेत्रों पर निर्भर है, अतः ग्रामीण क्षेत्र को सुदृढ़ करना शिक्षा के द्वारा ही संभव है। जब तक हम यह तथ्य नहीं समझेंगे कि विकास का लक्ष्य शिक्षा के पथ से होकर गुजरता है, तब तक शिक्षा को सर्वव्यापी बनाना असंभव है। ❑

सहायक प्राध्यापक
शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्याल,
सागर (म.प्र.)

संदर्भ ग्रंथ :

1. ग्रामीण विकास कार्यक्रम : इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
2. भारत में ग्रामीण अर्थव्यवस्था : पी.सी. जैन, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर
3. भारतीय अर्थव्यवस्था : रुद्रदत्त एवं के.पी. सुरन्दरम, एम चन्द्र एंड कम्पनी लि. 1998
4. Indian Economy : डा. बद्री विशाल त्रिपाठी, किताब महल, इलाहाबाद, 1998
5. विभिन्न पंचवर्षीय योजनाएं : योजना आयोग, भारत सरकार
6. व्यावसायिक अर्थशास्त्र : डा. पी.सी. अग्रवाल, साहित्य भवन पब्लिकेशंस, आगरा, 1999

कृपया ध्यान दें

कुरुक्षेत्र के संपादकीय पत्र–व्यवहार का पता बदल गया है। अतः पाठकों–लेखकों से अनुरोध है कि **कुरुक्षेत्र** से पत्र–व्यवहार करते समय अथवा अपनी रचनाएं–लेख भेजने के लिए निम्नांकित पते का ही उपयोग करें :

संपादक, **कुरुक्षेत्र**, कमरा नं. 655/661, विंग 'ए',
गेट नं. 5, निर्माण भवन,
ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली–110011

हमारे विज्ञापन और प्रसार व्यवस्थापक के पते में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा में पंचायतों की भूमिका

डा. मद्युश्री सिन्हा

आंकड़े प्रमाणित करते हैं पूरे देश में शिक्षा पर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया जा रहा है। बिहार में यह उपेक्षा सरकारी तथा गैर सरकारी स्तर के साथ–साथ सामाजिक स्तर पर भी जारी है। लेख में उदधृत आंकड़े इस तथ्य का भी खुलासा करते हैं कि भारी संख्या में छात्र–छात्राएं अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़ देते हैं। इनमें कितने ही प्रतिभावान गरीबी के कारण पढ़ाई छोड़ते हैं। न केवल ऐसे बच्चों की प्रतिभा अपनी चमक दिखाने के पूर्व ही मुरझा जाती है बल्कि इनके उत्कृष्ट योगदान से समाज और राष्ट्र वंचित रह जाता है।

भारत एक विकासशील और अपेक्षाकृत निर्धन देश है जहां साक्षरता तथा उच्च शिक्षा प्राप्त युवक–युवतियों का प्रतिशत विकसित देशों की तुलना में काफी कम है। 1991 की जनगणना के अनुसार भारत में कुल साक्षरता 52.21 प्रतिशत थी जिसमें महिलाओं की साक्षरता का प्रतिशत पुरुषों की तुलना में लगभग आधा था। सन् 2001 की जनगणना के अंतरिम आंकड़ों के अनुसार

कुल साक्षर लोगों का प्रतिशत बढ़कर 65.38 हो गया है। इनमें 75.85 प्रतिशत पुरुष आबादी साक्षर हैं जबकि उनकी लगभग 54.16 प्रतिशत महिलाएं ही साक्षर हो पाई हैं। अभी भी साक्षर पुरुषों की तुलना में महज दो–तिहाई महिलाएं ही पढ़ने–लिखने में समर्थ हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुष तथा महिला साक्षरता शहरों की अपेक्षा तो और भी कम है।

यदि भारतीय महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति पर दृष्टि डालें तो काफी असंतोषजनक तथ्य सामने आते हैं। यहां उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाओं का प्रतिशत मात्र 4.5 है तथा शिक्षित महिलाओं में से एक प्रतिशत से भी कम को तकनीकी शिक्षा प्राप्त है। वर्ष 1993–94 के आंकड़ों के अनुसार उच्च शिक्षा के क्षेत्र में छात्राओं की भागीदारी में कमी आई है तथा नौवीं–दसवीं कक्षा में पढ़ने वाले लड़कों की संख्या जहां 161.07 लाख पाई गई वहीं लड़कियों की संख्या मात्र 87.81 लाख ही थी जो लड़कों की संख्या की लगभग आधी है। इसी प्रकार बारहवीं कक्षा में पढ़ने वाले लड़कों की संख्या जहां 38.03 लाख थी, वहीं लड़कियों की संख्या आधी, यानी मात्र 19.24 लाख पाई गई।

उपर्युक्त आंकड़ों से निकली तस्वीर के मद्देनजर भारत सरकार ने प्राथमिक शिक्षा तथा साक्षरता की प्रगति पर असंतोष प्रकट करते हुए प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बना दिया है तथा बच्चे को स्कूल भेजना आवश्यक कर दिया है। यदि कोई माता–पिता ऐसा नहीं करते हैं तो उन्हें न्याय पंचायतों के द्वारा दंडित किए जाने का प्रावधान किया गया है। इसके अनुरूप बिहार में, जहां सन् 2001 की जनगणना के अनुसार 47.53 प्रतिशत लोग निरक्षर पाए गए हैं, माध्यमिक स्तर तक के विद्यालयों में स्थानीय जनता, अभिभावक और निर्वाचित पंचायत प्रतिनिधियों के साथ विद्यालय प्रमुख को मिलाकर, बिहार राज्य विद्यालय शिक्षा अधिनियम 2000 के जरिये विद्यालय शिक्षा समिति का गठन करने का प्रावधान किया गया है। इसमें चार वर्ष तक के सभी बालक–बालिकाओं को प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराना सुनिश्चित किया गया है। वर्तमान में अनेक विद्यालयों में शिक्षा समिति का गठन कई कारणों से नहीं हो पाया है। पंचायत चुनाव संपन्न हो जाने के बाद अब सभी शिक्षा समितियों में पंचायत के दो प्रतिनिधियों की जगह को भरते हुए इसे पूर्णरूप से प्रभावी बनाया जाना बेहद जरूरी है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 45 में भी कहा गया है कि संविधान के लागू होने के 10 वर्षों के अंदर 14 वर्ष तक के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य एवं मुफ्त शिक्षा का प्रावधान कर दिया जाएगा, परंतु इच्छाशक्ति के अभाव में आजादी के 54 वर्ष के बाद भी ऐसा संभव नहीं हो सका है। यदि भारतीय जनतंत्र के सिपाहियों ने संविधान के इस अनुच्छेद का ही तत्परता से पालन किया होता तो आज देश की 80 से 90 प्रतिशत आबादी शिक्षित होती। मगर इसके विपरीत, केन्द्र तथा विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा लगातार शिक्षा पर सरकारी बजट का प्रतिशत घटाया ही जाता रहा है। गौरतलब यह भी है कि पिछले 25 सालों में विश्वविद्यालयों की संख्या जहां तिगुनी हो चुकी है वहीं प्राथमिक विद्यालयों की संख्या डेढ़ गुनी भी नहीं हो पाई है। ज्ञातव्य है कि सन् 1970–71 में प्राथमिक विद्यालयों की कुल संख्या 4,08,400 थी जो सन् 1992–93 में बढ़कर 5,72,500 हो गई जबकि ठीक इसी अवधि में विश्वविद्यालयों की संख्या 82 से बढ़कर 207 हो चुकी है।

शिक्षा के क्षेत्र में आशातीत प्रगति नहीं होने के कारणों में यदि हम शिक्षा बजट के बंटवारे को ध्यान से देखें तो और भी चौंकानेवाले तथ्य उभरकर सामने आते हैं। पहली पंचवर्षीय योजना में शिक्षा पर बजट प्रावधान का 58 प्रतिशत प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में खर्च किया गया था जो आठवीं पंचवर्षीय योजना में मात्र

48 प्रतिशत ही रह गया। इस प्रकार जहां प्राथमिक शिक्षा को शिक्षा बजट का अधिक अंश मिलना चाहिए था वहीं इसे कम कर दिया गया। इस तरह संपूर्ण शिक्षा पर सरकारी बजट के प्रतिशत को बढ़ाने की जगह प्राथमिक शिक्षा के अंश को ही काटकर इसे माध्यमिक और उच्च शिक्षा में जोड़ दिया गया है जिस कारण साक्षरता के प्रतिशत में आशानुरूप बढ़ोतरी नहीं हो पाई है। यदि शिक्षाविदों ने शिक्षा बजट के असमान बंटवारे, शिक्षा नीति, शिक्षा व्यवसाय इत्यादि मुद्दों को तर्कपूर्ण ढंग से उठाया होता और योजना आयोग का ध्यान प्रभावी ढंग से इस ओर आकृष्ट कराया होता तो तस्वीर कुछ और होती एवं शिक्षा के क्षेत्र में इस तरह की अधोगति दृष्टिगोचर नहीं होती। लेकिन अपने को शिक्षाप्रेमी जनप्रतिनिधि करने वाले अधिकांश लोगों को वास्तव में शिक्षा से कुछ लेना–देना नहीं है। उनकी रोटी तो समाज की अज्ञानता और निरीहता के लंगर पर ही बेहतर ढंग से सेंकी जा सकती है।

बिहार में सितम्बर 1993 तक ग्रामीण क्षेत्र में प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों की कुल संख्या 61,559 थी। इनमें से शहरी क्षेत्रों में 4,961 विद्यालय थे। इस संख्या में बिना मकान के 6,461 विद्यालय थे तथा सिर्फ एक शिक्षक से चलने वाले प्राथमिक विद्यालयों की संख्या 11,632 थी। इसी अवधि में आंकड़ों से पता चलता है कि कक्षा एक में जहां लड़कों की संख्या 18,36,291 थी वहीं लड़कियों की संख्या मात्र 10,92,041 ही थी। कक्षा तीन में लड़कों की संख्या 5,91,087 और लड़कियों की संख्या 5,10,162 थी। इसी तरह कक्षा आठ में लड़कों की कुल संख्या 4,40,423 और लड़कियों की संख्या मात्र 1,67,235 थी। ये आंकड़े इस तथ्य के द्योतक हैं कि जैसे–जैसे कक्षा बढ़ती जाती है, छात्रों की संख्या में ड्राप–आउट प्रतिशत बढ़ रहा है। इसमें भी छात्राओं की संख्या ही अधिक है। प्रजातंत्र की सफलता के लिए समाज के सबसे प्रमुख अंग के मामले में ऐसी अधोगति क्यों उजागर हो रही है?

सामान्यतः यह माना जाता है कि मनोवृत्ति की प्रतिकूलता इसके लिए सबसे अधिक जिम्मेदार है। क्योंकि मनोवृत्ति स्वतः शिक्षा के प्रसार से जुड़ी हुई है। किन्तु, यदि व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाए तो हमारे समाज में मूलतः आर्थिक विपन्नता या आर्थिक संसाधनों का अभाव ही शिक्षा–प्रसार के क्षेत्र में प्रमुख बाधक है। गरीबी और पूर्वाग्रह देश की प्रगति में प्रमुख बाधक तत्व तो हैं ही, ये अमानवीय व्यवहारों की जननी भी हैं। सामाजिक सर्वेक्षण से इस तथ्य के यथेष्ट प्रमाण मिलते हैं कि

भारतीय संविधान में 73वें संशोधन के बाद सन् 1993 से राज्य सरकारों को यथाशीघ्र नया पंचायती राज कानून बनाकर गांवों के सर्वांगीण विकास के लिए मार्ग प्रशस्त करना था जिसे असम और झारखंड को छोड़कर सभी राज्यों ने देर–सबेर लागू कर दिया है। पंचायतों के अधिकार क्षेत्र में माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा उपलब्ध कराने का अधिकार भी शामिल किया गया है ताकि निर्वाचित स्थानीय सरकारें जनचेतना तथा जनभागीदारी से सबको शिक्षा सुलभ कराएं।

बहुतेरे प्रतिभावान छात्र संसाधनों के अभाव और गलत पारिवारिक मनोवृत्ति के कारण पढ़ना छोड़ देते हैं।

शिक्षा की नींव बाल्यकाल में ही पड़ती है। हमारी संस्कृति में इसे एक संस्कार के द्वारा प्रारंभ किया जाता है। इस समय एक बालक परिवार की परिधि से बाहर निकलकर किसी शिक्षण–संस्थान का सदस्य बनता है जहां बच्चों को सिर्फ शैक्षणिक ज्ञान ही नहीं दिया जाता वरन उनके मानस तथा आचरण को भी परिष्कृत किया जाता है। वास्तव में यह शिक्षा का व्यापक अर्थ है। अतः प्रारंभिक शिक्षा, जिसे हम प्राथमिक शिक्षा कहते हैं, व्यक्तित्व और चरित्र निर्माण का प्रथम सोपान है। प्राथमिक शिक्षा ही वह नींव है जिसके जरिये व्यक्तित्व की पूर्णता प्राप्त की जा सकती है।

वर्तमान में बिहार की निम्न साक्षरता प्रतिशत हमारी दयनीय स्थिति की तस्वीर पेश करती है। किंतु हम हैं कि कुंभकरणी निद्रा से जगने का नाम ही नहीं लेते। बिहार के साथ भारत के लगभग सभी राज्यों में त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था कायम हो चुकी है और प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा कार्य का अधिकार स्थानीय निकायों को दिया गया है। ऐसे में निर्वाचित जन–प्रतिनिधियों (जिनमें लेखिका स्वयं शामिल है) की अब खास जिम्मेदारी बनती है कि सब साथ मिलकर संपूर्ण साक्षरता एवं खासकर ग्रामीण तथा महिला साक्षरता को सम्मानजनक स्थिति में लाने के लिए अपना भरपूर योगदान करें। यहां एक ओर जहां स्पष्ट रूप से केन्द्र तथा राज्य सरकार द्वारा साक्षरता समितियों के माध्यम से साक्षरता अभियान की सफलता में निर्वाचित प्रतिनिधियों की महत्वपूर्ण भूमिका की आवश्यकता का खुलासा होता है वहीं दूसरी तरफ त्रिस्तरीय पंचायती राज के समस्त निर्वाचित प्रतिनिधियों की भी सामूहिक जिम्मेदारी बनती है। देशभर में विभिन्न सामाजिक कार्यों में अनेक स्वयंसेवी संगठन कार्यरत हैं जिनमें कुछ को छोड़कर अधिकांशः पाकेट सेवी संगठन ही हैं। इन पर खास निगरानी रखने की आवश्यकता है। यह काम भी निर्वाचित पंचायत प्रतिनिधियों को ही करना होगा। इस संदर्भ में यह उचित होगा कि किसी भी स्वयंसेवी संगठन की परियोजना को तभी मंजूर किया जाए जब उसे स्थानीय पंचायत, प्रखंड एवं जिला परिषद की मंजूरी प्राप्त हो जाए। इस कदम से स्वैच्छिक संगठनों की परियोजनाओं को ज्यादा प्रभावी बनाया जा सकेगा और उन्हें महज कागजी बन जाने से रोका जा सकेगा।

संक्षेप में, आवश्यकता इस बात की है कि प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के अलावा इसे प्रभावकारी भी बनाया जाये। यह व्यक्ति मात्र के लिए ही नहीं, बल्कि एक समुन्नत राष्ट्र के लिए आवश्यक है। इसकी उपेक्षा आत्मघाती होगी। ❑

जिला पार्षद, क्षेत्र सं. 16, जयनगर, मधुबनी

महिला सशक्तीकरण और खेतिहर महिलाएं

अनिल चमड़िया

आधी आबादी यानि महिलाओं की स्थिति आमतौर पर बेहतर नहीं है। ठीक उसी तरह से देश के सबसे बड़े श्रमिक वर्ग -- खेतिहर मजदूरों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति भी आमतौर पर दयनीय है। इस दोहरी मार में महिला खेतिहर मजदूरों की स्थिति क्या हो सकती है, इसकी कल्पना की जा सकती है। सरकार जब देशभर में महिलाओं के सशक्तीकरण का अभियान चलाती है और उसके मद्देनजर योजनाएं बनाती है तो क्या खेतिहर महिला मजदूरों की विशिष्ट समस्याओं का पर्याप्त ध्यान रख पातीं है? इस प्रश्न पर विचार किया जाना जरूरी है। यह इसीलिए भी जरूरी है कि महिला जाति में सबसे ज्यादा तादाद इन्हीं खेतिहर महिला मजदूरों की है। जाहिर है कि सरकार की योजनाओं या कार्यक्रमों के उद्देश्यों के तब तक पूरा हो जाने का दावा नहीं किया जा सकता जब तक कि यह बहुसंख्यक हिस्सा उसके दायरे में न आ जाए।

भारत में महिलाओं के अलग से विकास की चिंता का अर्थ ही यह है कि इनके साथ कुछ आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक-सांस्कृतिक विशिष्टताएं जुड़ी हुई हैं। सरकार ने समाज में लिंग आधारित भिन्नताओं को दूर करने की यात्रा एक तरह से सन् 1953 में महिला कल्याण की नीति अपनाकर शुरू की थी। बाद में यह यात्रा महिला विकास तक पहुंची और अब महिला सशक्तीकरण का नारा सामने आया है। जाहिर है कि इन तीन चरणों की यात्रा का हमें एक ठोस मूल्यांकन करना होगा। क्या पहले दो चरणों में देश की महिलाओं को अपने कार्यक्रमों और योजनाओं में समेट पाने में कामयाबी मिल पाई है? सशक्तीकरण का मतलब यदि हर क्षेत्र में उनकी उपस्थिति या भागीदारी को सुनिश्चित कराने से है तो यह जानना जरूरी है कि क्या महिलाओं की बड़ी तादाद इस स्थिति में पहुंच सकी है? कहीं ऐसा तो नहीं कि महिलाओं का एक बड़ा हिस्सा अभी भी कल्याण का पात्र बना हुआ है?

आमतौर पर खेतिहर महिलाओं की क्या स्थिति है? इसका अध्ययन करके देखें तो कुछ बातें साफतौर पर सामने आती हैं। यह कैसा विरोधाभास है कि खेतिहर महिला मजदूर एक तरफ काम के बोझ से दबी रहती हैं तो दूसरी तरफ काम के अभाव में रहती हैं। पहले काम के बोझ का मतलब अपने घरेलू कर्तव्यों से दबा होना है। दूसरे काम का मतलब अर्थ उपार्जन करने वाले काम के अवसरों का कम होना है। खेतिहर महिला मजदूर आमतौर पर पुरुषों के साथ समान काम करने के बावजूद समान मजदूरी नहीं पाती हैं। इसके अलावा उन्हें सालभर काम भी नहीं मिल पाता है। खेती में मशीनीकरण होते जाने की स्थिति में यदि काम के अवसरों के कम होने की मार सबसे ज्यादा किसी पर

पड़ी है तो इसी समूह पर पड़ी है। खेती के जो औजार तैयार किए जाते रहे हैं, वे महिलाओं की विशिष्टताओं को ध्यान में रखकर नहीं किए गए। दूसरी तरफ, मशीनीकरण की मार भी इन्हें ही झेलनी पड़ती है। विकास के यह मायने कतई नहीं हैं कि एक वर्ग को विकास के माध्यमों से ही चिढ़ हो जाए। ऐसे में यदि महिलाएं मशीनीकरण या इस तरह से विकास के माध्यमों का विरोध करें तो उसे अनुचित कैसे ठहराया जा सकता है?

महिला सशक्तीकरण के लिए सरकार ने जो योजनाएं तैयार की हैं, उन पर भी वे सवाल उठा रही हैं। खेतिहर महिला मजदूरों का मानना है कि सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों के लिए जो भी योजनाएं बनाई हैं, वह उनके लिए बहुत सहायक सिद्ध नहीं हो पा रही हैं। विभिन्न स्कीमों में संभवतः कोई भी ऐसी स्कीम नहीं है, जिनके बारे में खेतिहर महिला मजदूर यह दावा कर सके कि वह स्कीम पूरी तरह से केवल उन्हीं के लिए हैं। उन्हें किसी पूरी स्कीम के एक हिस्से में ही समाहित किया गया है। नतीजा यह होता है कि उन स्कीमों का लाभ उठाने से ग्रामीण खेतिहर महिला मजदूरों का एक हिस्सा वंचित रह जाता है। उनके बीच से यह मांग उठ रही है कि उनके लिए ही कुछ स्कीमें तैयार की जानी चाहिए। खासतौर से इस बात को भी ध्यान मे रखते हुए कि गांव के स्तर पर काम नहीं होने के कारण पुरुष मजदूर तो दूसरे गांव या इलाके की ओर मजदूरी के लिए पलायन कर जाते हैं लेकिन महिला खेतिहर मजदूरों की स्थिति इसकी इजाजत नहीं देती है। अपने घरों में न केवल बाल–बच्चों की, बल्कि बूढ़े–बुजुर्गों की देखभाल की जिम्मेदारी भी उन्हीं पर होती है। खासतौर से सूखा और बाढ़ या दूसरे प्राकृतिक आपदाओं के समय तो महिला श्रमिकों के हालात और बदतर हो जाते हैं।

लेकिन इस तरह की मांग उस तरह की स्कीमों के संदर्भ में की जा रही है जिससे कि उन्हें वर्ष में ज्यादा से ज्यादा दिनों तक काम के अवसर मिल जाएं ताकि वे आर्थिक रूप से स्वावलंबन की स्थिति में खड़ी हो जाएं। आर्थिक स्वावलंबन से उनके लिए दूसरे सामाजिक और राजनीतिक स्तरों पर भी भागीदारी करने की जमीन तैयार हो जाती है। लेकिन इस तरह के प्रयास भी उन्हें सुरक्षा बोध से लैश नहीं कर पाते हैं। इसके लिए जरूरी है कि खेतिहर महिला मजदूरों की संपत्ति में बराबर की हिस्सेदारी सुनिश्चित हो।

देश के विभिन्न हिस्सों में कई भूमि आंदोलन हुए हैं। कई आंदोलन तो कई–कई वर्षों तक चले हैं। सरकार ने अपने कार्यक्रमों के तहत ऐसे भूमिहीन परिवारों के बीच जमीन भी वितरित की है। लेकिन जमीन के पट्टे ज्यादातर पुरुषों के नाम ही मिले हैं। आखिर इसके क्या कारण हैं? क्या यह हमारे पूरे प्रशासनिक ढांचे पर पुरुषवादी मानसिकता के वर्चस्व का उदाहरण है? ऐसे बहुत ही कम उदाहरण हैं जहां जमीन के पट्टे किसी भूमिहीन परिवार की महिला और पुरुष दोनों ही सदस्यों के नाम से मिले हों। इस बात से फर्क भी पड़ता नहीं देख गया है कि भूमि के पट्टे को वितरित करने वाला अधिकारी महिला या पुरुष में से कौन है। ऐसा नहीं है कि यदि महिला अधिकारियों के मातहत भूमि के पट्टे वितरित किए गए हों तो वहां पर महिला भूमिहीन किसान को उसके नाम से पट्टे मिले हों। जबकि कानून में इसके लिए पर्याप्त व्यवस्था की गई है। लेकिन यह शर्त कभी भी नहीं रही है कि भूमि का पट्टा जब भी किसी भूमिहीन परिवार को मिलेगा, वह परिवार के पुरुष और महिला दोनों के नाम से ही दिया जाएगा।

स्थाई संपत्ति नहीं होने के कारण महिला मजदूरों को खेतों में मिलने वाले किसी किस्म के काम और मालिकों की मनमानी शर्तों पर ही गुजर–बसर करनी होती है। सरकार ने अपने विभिन्न कार्यक्रमों के तहत ग्रामीण हलकों के बैंकों को भी कर्ज देने का निर्देश दिया है लेकिन यह सर्वे करके पता लगाया जा सकता है कि कितनी ऐसी श्रमिक महिलाओं को बैंक ने कर्ज मुहैया कराया है जिनके पास किसी किस्म की स्थाई संपति नहीं है। शायद ही इस तरह के एक दो उदाहरण देखने को मिल पाएं। आमतौर पर बैंक बिना संपति वाले को कोई कर्ज मुहैया नहीं कराते हैं। यह देखने में आया है कि जिन–जिन जगहों पर महिलाओं को भूमि का पट्टा मिला है, वहां पर उनका जीवनस्तर काफी ऊंचा हुआ है। इन जगहों में महिलाओं ने सभी स्तरों यानी परिवार, पड़ोस और समाज के निर्णयों में अपनी अहम और स्वतंत्र भूमिका भी अदा की है। यह कई बार प्रमाणित हो चुका है कि महिलाओं की नेतृत्व क्षमता पुरुषों से किसी मायने में कम नहीं है। कई स्थानों में तो महिलाओं ने भी भूमि आंदोलनों का नेतृत्व किया है। उन्होंने अपनी जमीन पर उत्पादन भी बढ़ाया है। इस तरह से देखा जा रहा है कि स्थाई संपत्ति नहीं होने की वजह से वे सरकार की कई योजनाओं का लाभ नहीं उठा पाती हैं। महिलाओं का विकास विभिन्न चरणों के माध्यम से उचित तरीके से नहीं हो तो कई बार महिला सशक्तीकरण का अभियान महज औपचारिकता लगता है। अभी बदली हुई नीतियों के कारण महिलाओं के अच्छे–खासे हिस्से की भागीदारी से कई जगहों पर तो महज संवैधानिक जरूरतों की औपचारिकताएं ही पूरी की गई हैं। वास्तव में उनके घर का पुरुष सदस्य और परिवार का मुखिया ही उनके नाम पर तमाम तरह के निर्णय लेता है या वह निर्णयों में प्रभावशाली भूमिका अदा करता है।

महिलाओं का सशक्तीकरण एक प्रक्रिया का हिस्सा है। लिहाजा उस प्रक्रिया को पूरा किए बिना उसके उद्देश्यों को हासिल नहीं किया जा सकता है। महिलाओं के सशक्तीकरण अभियान के आलोक में एक बार फिर सहकारिता आंदोलन पर जोर दिए जाने की जरूरत है। पंजाब में हाल ही में श्रमिक महिलाओं के एक सम्मेलन में तो महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए इस पहलू पर खासतौर से जोर दिया गया। महिलाओं के अपने सहकारी संगठनों की तादाद देखें तो ये उनकी जनसंख्या के हिसाब से बहुत ही कम हैं।

महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए सहकारिता आंदोलन एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। खासतौर से वैसी महिलाओं के लिए जिनके पास अपना श्रम बेचने के अलावा कुछ नहीं है। उनके पास कई तरह के हुनर हैं। निर्णय लेने की क्षमता है। बेहतर उत्पादन का कौशल है। अब ऐसी कोई ठोस नीति सामने आनी चाहिए जिससे कि महिलाओं के सहकारी संगठनों के गठन और उसके विकास को ज्यादा से ज्यादा बल मिले। न केवल इससे उनके आर्थिक स्वावलंबन की स्थिति मजबूत होगी बल्कि उनमें एक सांगठनिक भावना और सामूहिकता का भी विकास होगा। आज के दौर में महिलाओं के अंदर उद्यमशीलता की भावना का विकास उनके सशक्तीकरण के लिए अनिवार्य सा लगता है। ❑

सी–251, सेक्टर–19, रोहिणी,
दिल्ली–95

भारतीय महिलाएं : नई-नई भूमिकाओं में

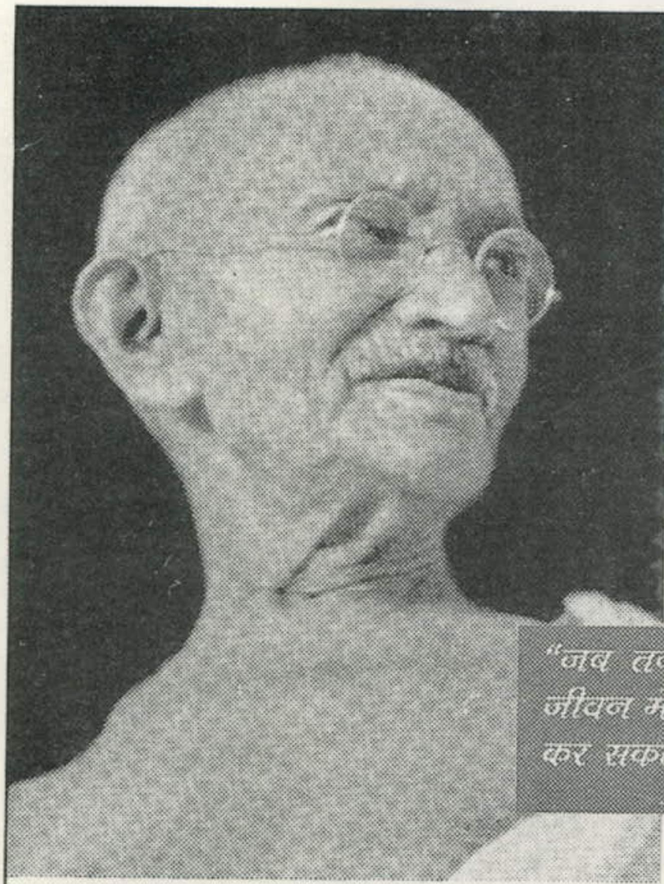

"जब तक भारत की महिलाएं सार्वजनिक जीवन में हिस्सा नहीं लेंगी देश तरक्की नहीं कर सकता।"

- महात्मा गांधी

भारतीय महिलाएं आज जीवन के सभी क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही हैं। आइए, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की 132वीं जयंती पर हम सब उनके सपनों को साकार करने का प्रण लें।

davp 2001/323

गांवों का नक्शा बदलेगी सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना

वेद प्रकाश अरोड़ा

संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना गांवों को बेरोजगारी और अर्द्धरोजगारी की मनहूसियत से छुटकारा दिलाने के उद्देश्य के साथ ही इस संकल्प के साथ आरंभ की गई है कि गांवों में किसी को भूखा नहीं सोने दिया जाएगा। यह योजना केन्द्र की सहायता से चलाई जाएगी। इसकी नोडल अथवा केन्द्रीय समन्वयक एजेंसी ग्रामीण विकास मंत्रालय होगा।

ऐसे समय में जब देश में 20 करोड़ व्यक्ति गरीबी रेखा के नीचे जिंदगी की अंधेरी रातें काटने को विवश हों और शहरों की तुलना में गांवों में बेरोजगारी की फौज कहीं अधिक बढ़ती जा रही हो, संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना तपती दोपहरी में जीवनदायिनी वर्षा की बौछारें लेकर आई है। इसका औचित्य और महत्व तब अधिक बढ़ जाता है, जब हम गांवों में बेरोजगारों की आग को हर दिशा में पसरते देखते हैं। ग्रामवासियों के परिवारों के बड़े आकार, संतानों में कृषि–भूमि के बंटवारे से चकों के सिमटते आकार और उस पर कृषि की प्रति–एकड़ उत्पादकता में निरंतर गिरावट से छोटे किसानों और खेत मजदूरों का जीवन नारकीय बन गया है। नई संतानों को कृषि कार्य में न खपा पाने की बेबसी और कृषि से जुड़े व्यवसाय में अवसरों की निरंतर कमी से बेरोजगारी घटने का नाम नहीं लेती।

जनसंख्या में बेतरतीब वृद्धि तो कहर ढा ही रही है, मंदी के दौरान गांवों में नया रोजगार पाने के सभी अरमान धरे के धरे रह जाते हैं।

इस प्रतिकूल स्थिति में समग्र ग्रामीण रोजगार योजना सुखद संदेश लेकर आई है। इसे अगर सही दृष्टि, सही प्रयासों और सच्चे संकल्प से लागू किया गया तो गांवों की अभिशप्त अहिल्या योजना के स्पर्श से जी ही नहीं उठेगी, उसका जीवन नए रंगों और नई उमंगों से भर उठेगा।

संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना गांवों को बेरोजगारी और अर्द्धरोजगारी की मनहूसियत से छुटकारा दिलाने के उद्देश्य के साथ ही इस संकल्प के साथ आरंभ की गई है कि गांवों में किसी को भूखा नहीं सोने दिया जाएगा। यह योजना केन्द्र की सहायता से चलाई जाएगी। इसकी नोडल अथवा केन्द्रीय समन्वयक एजेंसी ग्रामीण विकास मंत्रालय होगा। योजना के तहत रोजगार के अवसर पैदा करने के अलावा खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने, टिकाऊ सामुदायिक परिसम्पत्ति का निर्माण करने और ग्राम स्तर पर बुनियादी ढांचे का विकास करने के चार लक्ष्य हासिल किए जाएंगे। सामुदायिक परिसंपत्तियों के निर्माण में मिट्टी और नमी के संरक्षण कार्य, जल–शेडों और पारंपरिक जल संसाधनों का विकास, वनरोपण, सूखे की रोकथाम के काम, गांवों के भीतर की सड़कों जैसे ग्रामीण बुनियादी ढांचे, स्कूल और चिकित्सा इमारतों तथा विपणन के आधारभूत ढांचे का निर्माण शामिल है। योजना के अंतर्गत 5,000 करोड़ रुपये मूल्य का 50 लाख टन अनाज राज्य सरकारों और केन्द्र शासित प्रदेशों को मुफ्त दिया जाएगा। इसके अलावा 5,000 करोड़ रुपये मजदूरी, परिवहन और माल–सामान के खर्च के लिए दिए जाएंगे। अनाज के मूल्य का भुगतान ग्रामीण विकास मंत्रालय सीधे खाद्य निगम को करेगा। योजना के अंतर्गत प्रत्येक वर्ष रोजगार के लगभग 100 करोड़, यानी एक अरब श्रम दिवसों के सृजन की परिकल्पना की गई है। प्रयास यह रहेगा कि प्रत्येक जरूरतमंद परिवार के एक सदस्य को वर्ष में कम से कम सौ दिन रोजगार मिल सके। दिहाड़ी मजदूर को एक दिन काम के लिए पांच किलोग्राम अनाज और वेतन का शेष भाग नकद दिया जाएगा। भारत सरकार सभी राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों को समुचित मात्रा में अनाज देगी। राज्य सरकारों और केन्द्र शासित प्रशासनों को मजदूरी देते हुए अनाज का मूल्य निर्धारित करने की छूट रहेगी। वे इसे गरीबी रेखा के नीचे के मूल्य या गरीबी रेखा के ऊपर के मूल्य या फिर दोनों दरों के बीच कहीं भी निर्धारित कर सकती हैं। शेष वेतन नकद दिया जाएगा और देखा जाएगा कि मजदूरों को अधिसूचित न्यूनतम वेतन हर हालत में प्राप्त हो। वर्तमान रोजगार आश्वासन योजना और स्वर्ण जयंती रोजगार योजना इस समग्र ग्रामीण रोजगार योजना में मिला कर समन्वित रूप से चलाई जाएगी।

कागज पर यह योजना बहुत मानवीय, प्रभावकारी, विशाल और युगांतकारी जान पड़ती है, लेकिन गांवों के दिन फिरने के लिए इसका क्रियान्वयन उतनी ही मुस्तैदी, कुशलता, निष्पक्षता और गतिशीलता से होना चाहिए जितनी ईमानदारी के साथ इसकी घोषणा की गई है।

यह योजना स्ट्रीम नाम से दो धाराओं में लागू की जाएगी। ये धाराएं पंचायती राज संस्थाओं से गहरे जुड़ी होंगी। पहली धारा जिला और मध्यवर्ती पंचायत स्तरों पर लागू की जाएगी। दूसरी धारा ग्राम पंचायत स्तर पर प्रवाहित होगी। दोनों धाराओं के लिए पच्चीस–पच्चीस अरब रुपये निर्धारित किए गए हैं। पहली धारा की 2,500 करोड़ रुपये की राशि का 20 प्रतिशत यानी 500 करोड़ रुपये जिला परिषदों को और 30 प्रतिशत राशि यानी 750 करोड़ रुपये मध्यवर्ती पंचायतों अथवा पंचायत समितियों को दिए जाएंगे। बाकी 50 प्रतिशत हिस्सा यानी 1,250 करोड़ रुपये सीधे ग्राम पंचायतों को जिला परिषदों या जिला ग्रामीण विकास एजेंसियों के मार्फत दिए जाएंगे। इस काम के लिए केन्द्र 75 प्रतिशत और राज्य 25 प्रतिशत राशि देंगे। केन्द्र शासित प्रदेशों को केन्द्र शत–प्रतिशत राशि उपलब्ध कराएगा।

उल्लेखनीय है कि संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना की घोषणा इस वर्ष स्वतंत्रता दिवस पर प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने लाल किले की प्राचीर से की थी। बाद में केन्द्रीय मंत्रिमंडल ने इस पर स्वीकृति की मोहर लगाई। इसके ब्यौरे, रूपरेखा और प्रावधानों के लिए पांच सितंबर को आयोजित बैठक की अध्यक्षता केन्द्रीय कृषि मंत्री अजित सिंह ने की जिसमें वित्त मंत्री यशवंत सिन्हा, ग्रामीण विकास मंत्री वेंकैया नायडू के अलावा मध्य प्रदेश के मुख्य मंत्री दिग्विजय सिंह, असम के मुख्य मंत्री तरुण गोगोई और दस राज्यों के ग्रामीण विकास मंत्री मौजूद थे। बैठक में खाद्यानों की खरीद, संग्रह और वितरण की विकेंद्रित व्यवस्था के लिए अन्न कोष बनाने की योजना सिद्धांत रूप में मंजूर कर ली गई। ये अनाज बैंक ग्राम और पंचायत स्तर पर बनाए जाएंगे। अनाज बैंक स्थापित करने का सुझाव कृषि विशेषज्ञ एम.एस. स्वामीनाथन का था। इस सुझाव को प्रस्ताव रूप में मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री दिग्विजय सिंह ने रखा, जिन्होंने पहले से ही अपने राज्य में अन्न कोष की योजना को सफलतापूर्वक चला रखा है।

अन्न बैंकों की स्थापना से परिवहन व्यय और आर्थिक लागत में भारी कमी के साथ–साथ देहाती इलाकों में खाद्य–सुरक्षा की व्यवस्था की जा सकेगी। मध्य प्रदेश में लागू इस तंत्र के कामकाज का एक केन्द्रीय दल अध्ययन कर रहा है। निस्संदेह सामुदायिक परिसंपत्ति और ग्रामीण मूल ढांचे के निर्माण में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रहेगी। गांवों में अन्न बैंक बन जाने से सार्वजनिक वितरण प्रणाली के वर्तमान दोषों से छुटकारा मिल सकेगा और आम लोगों तक अनाज न पहुंचने की शिकायत भी नहीं रहेगी। इससे भूख से मृत्यु की घटनाएं भी कम अथवा नगण्य हो जाएंगी। अब मेहनत–मजदूरी से कुछ धन भी मिलेगा और मजदूरी की एवज में अनाज भी। सार्वजनिक वितरण प्रणाली को सुचारू बनाने के लिए न

सिर्फ पंचायतों को, बल्कि स्वयंसेवी संगठनों को भी, इससे जोड़ा जाएगा। कोई कारण नहीं कि गरीबी रेखा से नीचे जीवन बसर करने वाले लोगों के लिए यह नई योजना वरदान न बन पाए और उनके जीवन में खुशी न ला दे। केन्द्र द्वारा संचालित समग्र ग्रामीण रोजगार योजना के मानदंड राज्यों के साथ परामर्श से तय कर लिए गए हैं। बैठक में चालू वर्ष के दौरान योजना के तहत सूखा, बाढ़ और प्राकृतिक आपदाओं से ग्रस्त 10 राज्यों के लिए 18 लाख 41 हजार टन अनाज की व्यवस्था की गई है। इन राज्यों में मध्य प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, आंध्र प्रदेश, गुजरात, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान, कर्नाटक और केरल शामिल हैं। बिहार के बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों के लिए अलग से एक लाख टन खाद्यान्न देने की व्यवस्था की गई है।

गत 25 सितंबर को प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने मथुरा से लगभग 25 किलोमीटर दूर फरह विकास खंड के एक पिछड़े गांव नागला चंदरभान में समग्र ग्रामीण रोजगार योजना की विधिवत शुरुआत करते हुए किसी को भूखा न सोने देने का संकल्प दोहराया। इस समारोह में प्रधानमंत्री ने योजना की विशेषताओं और खूबियों का उल्लेख किया और कहा कि गांवों में बेरोजगारी दूर करने के लिए पहली बार इतनी विशाल और ठोस योजना बनाई गई है। ऐसे युवा, जिनके पास खेती के लिए न जमीन है और न उद्योग खोलने के लिए पूंजी, उनके लिए यह योजना वरदान प्रमाणित होगी। बुनियादी सवाल है इस योजना को कारगर ढंग से लागू करने का। अगर पंचायतों ने इस योजना को प्रभावी तरीके से मूर्त रूप दिया तो गांव में नवनिर्माण की लहर दौड़ जाएगी। यह एक बड़ी योजना है और सरकार ने इसके लिए हजारों करोड़ रुपये का प्रावधान किया है। पंचायतों का कर्तव्य है कि वे अभावग्रस्त व्यक्तियों को ढूंढकर उन्हें इसका लाभ दिलाएं। प्रधानमंत्री ने नौजवानों से सरकारी नौकरी का मोह त्यागने और उन्नत खेती के प्रयोग के लिए आगे आने का आह्वान किया। वे चाहते हैं कि जिस तरह भूकंप से तबाह हुआ गुजरात फिर सिर उठा कर खड़ा हो रहा है, वैसी ही भावना गांव-गांव में जगाई जाए, तब प्रत्येक गांव में नई जिंदगी करवट लेने लगेगी और नवनिर्माण की अलख जल उठेगी। संपूर्ण ग्रामीण विकास योजना कतार में खड़े सबसे अंतिम और अंत्यज तथा सबसे गरीब व्यक्ति को रोजगार दिलाकर उसके नीरस जीवन की तल्खियां कम कर सुख की किरणें बिखरने का प्रयास है।

कागज पर यह योजना बहुत मानवीय, प्रभावकारी, विशाल और युगांतकारी जान पड़ती है, लेकिन गांवों के दिन फिरने के लिए इसका क्रियान्वयन उतनी ही मुस्तैदी, कुशलता, निष्पक्षता और गतिशीलता से होना चाहिए जितनी ईमानदारी के साथ इसकी घोषणा की गई है। गांवों की तस्वीर में गुलाबी रंग भरने के लिए कृषि सुधारों के साथ-साथ पीने का पानी पहुंचाने, संपर्क सड़कें बनाने, बिजली पहुंचाने, रोजगार के नए अवसर जुटाने और छोटे-छोटे धंधे शुरू करने की अनगिनत कल्याणकारी योजनाएं स्वाधीनता मिलने के बाद शुरू की गई, लेकिन इनका महज 15-16 प्रतिशत लाभ ही जनसाधारण को मिल पाया है। दूसरे शब्दों में आवंटित राशि का बहुलांश या तो अन्य मदों पर खर्च कर दिया जाता है या फिर अधिकारियों-बिचौलियों की जेबों में चला जाता है। पूर्वी राज्यों से तो भारी मात्रा में अनाज को चोरी-छिपे बांग्लादेश ले जाने की कई घटनाएं प्रकाश में आई हैं। इसलिए योजना की सफलता के लिए उसके संपूर्ण क्रियान्वयन पर नजर रखना और कमियों को दूर करने के लिए सामुदायिक आडिटिंग जैसे कारगर कदम उठाना जरूरी है, जिससे प्रत्येक निर्माण कार्य का पूरा लाभ आमजन को मिल सके। इसी बात को वाणी देते हुए गत 20 अगस्त को उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की खंडपीठ ने एक जनहित याचिका पर व्यवस्था दी कि केवल योजनाएं बनाना पर्याप्त नहीं, बल्कि अनाज जरूरतमंद लोगों तक पहुंचे यह जरूरी है। खंडपीठ ने केन्द्र और राज्य सरकारों से भारतीय खाद्य निगम के गोदामों में अनाज की अतिरिक्त मात्रा को देखते हुए यह पक्का प्रबंध करने को कहा कि देश में कोई भी व्यक्ति भूख से न मरे। साथ ही देखा जाये कि भारतीय खाद्य निगम के गोदामों में पड़ा हुआ अनाज सड़ने न दिया जाये। याचिका में कहा गया था कि 'काम के बदले अनाज' देने की योजना के अंतर्गत केवल दस प्रतिशत लोगों को ही काम मिल सका है।

ऐसा न हो कि जिस तरह समुचित ग्रामीण विकास कार्यक्रम से गरीबों की आय में मामूली वृद्धि ही हुई है और वे गरीबी रेखा से ऊपर नहीं उठ पाए, उसी तरह संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना से गैर-कृषि क्षेत्र में रोजगार और आय के अवसर बढ़ने के बावजूद ग्रामीण गरीबों के जीवन स्तर में सूतभर का ही सुधार हो पाए।

यह नई व्यापक योजना पंचायती राज संस्थाओं की मार्फत लागू की जाएगी। इस समय देश में लगभग ढाई लाख पंचायतें हैं। इनमें से सवा दो लाख ग्राम पंचायतें हैं। पंचायतों में सभी स्तरों पर 34 लाख निर्वाचित प्रतिनिधि हैं। लेकिन कुछ राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में संविधान के अनिवार्य और आदेशात्मक प्रावधानों का पालन नहीं हुआ है। कई राज्यों में तो पंचायत चुनाव तक नहीं हुए। दूसरे, 73वें तथा 74वें संविधान संशोधनों के बावजूद अधिकारों का हस्तांतरण नहीं हुआ है। कहीं चुनावी विवादों के कारण अदालतों में मुकदमे चल रहे हैं। इससे पंचायती चुनाव स्थगित करने पड़े हैं। कुछ क्षेत्रों में चुनाव पूरा हो जाने के बावजूद व्यवधान डालने की कार्रवाइयां जारी हैं। पंचायती राज संस्थाओं के महत्व को कम करने के लिए कहीं-कहीं समानांतर संगठन बना दिए गए हैं। मध्य प्रदेश और हरियाणा में कथित ग्राम सरकारें और ग्रामीण विकास समितियां बनाकर पंचायतों के अधिकारों और महत्व को नकारने का प्रयास किया गया है, जबकि मात्र पंचायतों

को ही कानूनी और संवैधानिक मान्यता मिली हुई है।

पूरी योजना पर नजर डालने पर यह समझ में नहीं आता कि कैसे और कितने बाजार मूल्य के आधार पर यह निश्चित कर दिया गया है कि 50 लाख टन गेहूं 5,000 करोड़ रुपये का होगा। फिर क्या यह मूल्य हमेशा के लिए स्थिर रखना विवेकपूर्ण होगा? मूल्यों के उतार–चढ़ाव के साथ–साथ अनाजों के मूल्य भी घट–बढ़ सकते हैं। इसी तरह मजदूरी दर, परिवहन लागत तथा अन्य खर्चों के लिए निर्धारित राशि का बाजार मूल्य भी घट–बढ़ सकता है। मजदूरों का मेहनताना भी एक सा चलते रहने का सवाल नहीं है। मजदूरी की न्यूनतम सीमा वैसे ही बढ़ती रहती है, जैसे गरीबी की रेखा और उसका मापदंड। इस स्थिति में अनाज की मात्रा और नकद राशि को एक ही स्तर पर बनाए रखना गले के नीचे नहीं उतरता। विशेषकर जब देश में प्राकृतिक आपदाओं से असाधारण स्थिति उत्पन्न हो जाए। मजदूरों को जिन्स रूप में वेतन देते समय अनाज का मूल्य निर्धारित करने में धांधली की गुंजाइश रहती है और रहेगी। बड़ी बात नहीं कि श्रमिकों को न केवल घटिया किस्म का अनाज मिले, बल्कि नकदी के रूप में आंसू पोंछनेभर के लिए नाममात्र की रकम मिले और फिर गरीबी रेखा के नीचे और ऊपर कहीं भी अनाज का मूल्य और मात्रा निर्धारित करने में मनमानी का चक्र पूरे जोर से चलाया जाय। इससे श्रमिकों को ही घाटा होगा। इस तरह कोई बड़ी बात नहीं कि गांव–गांव में भ्रष्टाचार के कीड़े दिन–प्रतिदिन अधिक पनपेंगे। ऐसा न हो कि जिस तरह समुचित ग्रामीण विकास कार्यक्रम से गरीबों की आय में मामूली वृद्धि ही हुई है और वे गरीबी रेखा से ऊपर नहीं उठ पाए, उसी तरह संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना से गैर–कृषि क्षेत्र में रोजगार और आय के अवसर बढ़ने के बावजूद ग्रामीण गरीबों के जीवन स्तर में सूतभर का ही सुधार हो पाए। कुछ क्षेत्रों में यह आशंका व्यक्त की गई है कि पंचायतों के अंदर और पंचायतों के आपसी विवादों तथा पंचायत समितियों के अंदर और जिला समितियों में बढ़ते भ्रष्टाचार से आखिरी पंक्ति में खड़े गरीबों की दशा पहले की तरह कमोबेश दयनीय बनी रहेगी। यह भी देखने में आया है कि कुछ राज्य बजट में इस मद के लिए निर्धारित राशि में अपनी भागीदारी को पूरा नहीं करते, जैसा कि इधर पूर्वोत्तर क्षेत्र में देखने में आया। ये राज्य, केन्द्र सरकार से धन पाने की ललक के बावजूद अपने हिस्से की राशि नहीं जुटा पाये। संपूर्ण रोजगार योजना के संदर्भ में तो अभी से कुछ राज्यों से ये आवाजें उठने लगी हैं कि केंद्र को इस स्कीम का सारा व्यय स्वयं उठाना चाहिए क्योंकि राज्यों के लिए आवश्यक संसाधन जुटा पाना कठिन होगा। निस्संदेह केंद्र अनाज के लिए सारी राशि देगा लेकिन इस नई योजना के सफल क्रियान्वयन में परिवहन और भंडारण यानी अनाज की ढुलाई और उसे गोदामों में जमा कर रखने की समस्याओं के समाधान में राज्यों की कोताही आड़े आ रही है। दूसरी तरफ, केंद्र के अनुसार स्थानीय स्तर पर सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिए अनाज की ढुलाई और भंडारण क्षमता के निर्माण का खर्च राज्यों को ही उठाना होगा। यह निर्णय राज्य करेंगे कि उन्हें कितना अनाज चाहिए, उसे वह आम लोगों तक कैसे पहुंचाएं और उसका भंडारण कहां और कैसे करें, क्योंकि इस संबंध में केंद्र न तो कोई निर्णय करेगा और न खर्च की राशि देगा। देखने में आया है कि अधिकतर राज्यों के पास चुनौती का सामना करने के लिए न तो पर्याप्त संसाधन हैं, न बुनियादी ढांचे की यथेष्ट सुविधाएं और न अपेक्षित दृढ़ संकल्प। पंजाब जैसे राज्यों में स्थानीय स्तर पर अनाज भंडारण की काफी क्षमता है लेकिन बिहार और उड़ीसा जैसे राज्यों में भंडारण क्षमता और अन्य संसाधनों की कचोटने वाली कमी है। संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना की सफलता के लिए इन दिक्कतों को दूर करने के साथ ही यह देखना होगा कि ऊपर से नीचे तक पूरी पारदर्शिता हो, संबद्ध अधिकारी जबाबदेह हों, सामाजिक लेखा परीक्षा की अनिवार्य व्यवस्था हो और पंचायत प्रणाली के सभी निकायों के चुनाव नियमित रूप से हों। योजना जन–जन से जुड़ी होगी और लागू करने वाले भी जन–जन के ही प्रतिनिधि होंगे – इसलिए जनता की इसी बढ़ी भागीदारी का सही और स्वतंत्र रूप से जाति, धर्म, दल और क्षेत्र की संकीर्णताओं से ऊपर उठकर निर्वाह करना होगा। उनके कार्यों के सफल संचालन के लिए हर कदम पर नजर रखनी पड़ेगी। बेहतर होगा कि पारदर्शिता के लिए ग्रामसभाएं स्वयं लाभार्थियों का चयन करें और निर्माण कार्यों का ब्योरा आम लोगों को विभिन्न माध्यमों से उपलब्ध कराएं। इन सब के अलावा राज्य सरकारें को गांव, मध्यवर्ती और जिला स्तर पर सबसे कुशल और श्रेष्ठ पंचायतों तथा स्वयंसेवी समूहों को पुरस्कारों से सम्मानित करे। उम्मीद की जानी चाहिए कि इन कुछ निषेधों, सावधानियों और प्रोत्साहनों के सुंदर समन्वय से योजना को कई अन्य ग्रामीण योजनाओं की तरह विफलता की गाथा नहीं बनने दिया जाएगा और हर हाथ को काम और हर खेत को पानी का सपना साकार हो सकेगा। ❑

अधिकतर राज्यों के पास चुनौती का सामना करने के लिए न तो पर्याप्त संसाधन हैं, न बुनियादी ढांचे की यथेष्ट सुविधाएं और न अपेक्षित दृढ़ संकल्प। पंजाब जैसे राज्यों में स्थानीय स्तर पर अनाज भंडारण की काफी क्षमता है लेकिन बिहार और उड़ीसा जैसे राज्यों में भंडारण क्षमता और अन्य संसाधनों की कचोटने वाली कमी है। संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना की सफलता के लिए इन दिक्कतों को दूर करने के साथ ही यह देखना होगा कि ऊपर से नीचे तक पूरी पारदर्शिता हो और संबद्ध अधिकारी जबाबदेह हों।

268 सत्य, निकेतन,
मोती बाग, नई दिल्ली–21

ग्रामीण विकास में पशुधन की भूमिका

डा. गणेश कुमार पाठक

भारत में पशुपालन व्यवसाय के पिछड़ा होने और उसके स्तर में गिरावट का मुख्य कारण अनुपयोगी पशुओं का अधिक संख्या में होना, किसान की निर्धनता, आवश्यकता से अधिक पशु रखने की मजबूरी, अच्छी नस्ल के पशुओं का न होना, उत्तम चारे का अभाव, दोषपूर्ण अभिजनन क्रिया और पशुओं के रखने हेतु अस्वास्थ्यकर स्थानों का होना है। रोग एवं बीमारियों का उचित इलाज न होना, पशुओं के क्रय–विक्रय के लिए उचित बाजार का न होना, अशिक्षा के कारण लाभकारी और अलाभकारी पशुओं में पूर्ण भेद न कर पाना, चरागाह की कमी, पूंजी के अभाव में अच्छी नस्ल के पशु न खरीद पाना और पशुपालन व्यवसाय के प्रति सरकार की उदासीनता भी महत्वपूर्ण कारण हैं जिनके चलते भारत में पशुपालन व्यवसाय पनप नहीं पा रहा है।

पशुपालन व्यवसाय हमारे देश का प्राथमिक व्यवसाय रहा है। इस बात की पुष्टि सिन्धु घाटी की खुदाई से प्राप्त अवशेषों से हो जाती है। पशुओं के महत्व को देखते हुए ही भारतीय मनीषियों ने पशुओं के संरक्षण हेतु विभिन्न विधान बना दिए, जो आजतक चले आ रहे हैं। प्राचीन काल से आजतक भारत में पशुधन का महत्व कायम है एवं पशुपालन व्यवसाय निरंतर होता आ रहा है।

भारत में विश्व की कुल पशु संख्या के 19 प्रतिशत पशु हैं। पशु संख्या की दृष्टि से भारत का विश्व में प्रथम स्थान है, जबकि पशु घनत्व की दृष्टि से द्वितीय स्थान है। स्वतंत्रता के समय अपने देश में 28.50 करोड़ पशु थे, जिनकी संख्या वर्ष 1956, 1961, 1966, 1980 एवं 1996 में बढ़कर क्रमशः 30, 60, 32.77, 34.30, 36.9 एवं 44.2 करोड़ हो गई (तालिका–1)।

वर्ष 1996 में की गई पशुगणना के अनुसार भारत में गाय, भैंस, ऊंट, बकरी और मुर्गा–मुर्गी की संख्या क्रमशः 19.6, 8.0, 1.5, 4.5, 12.0

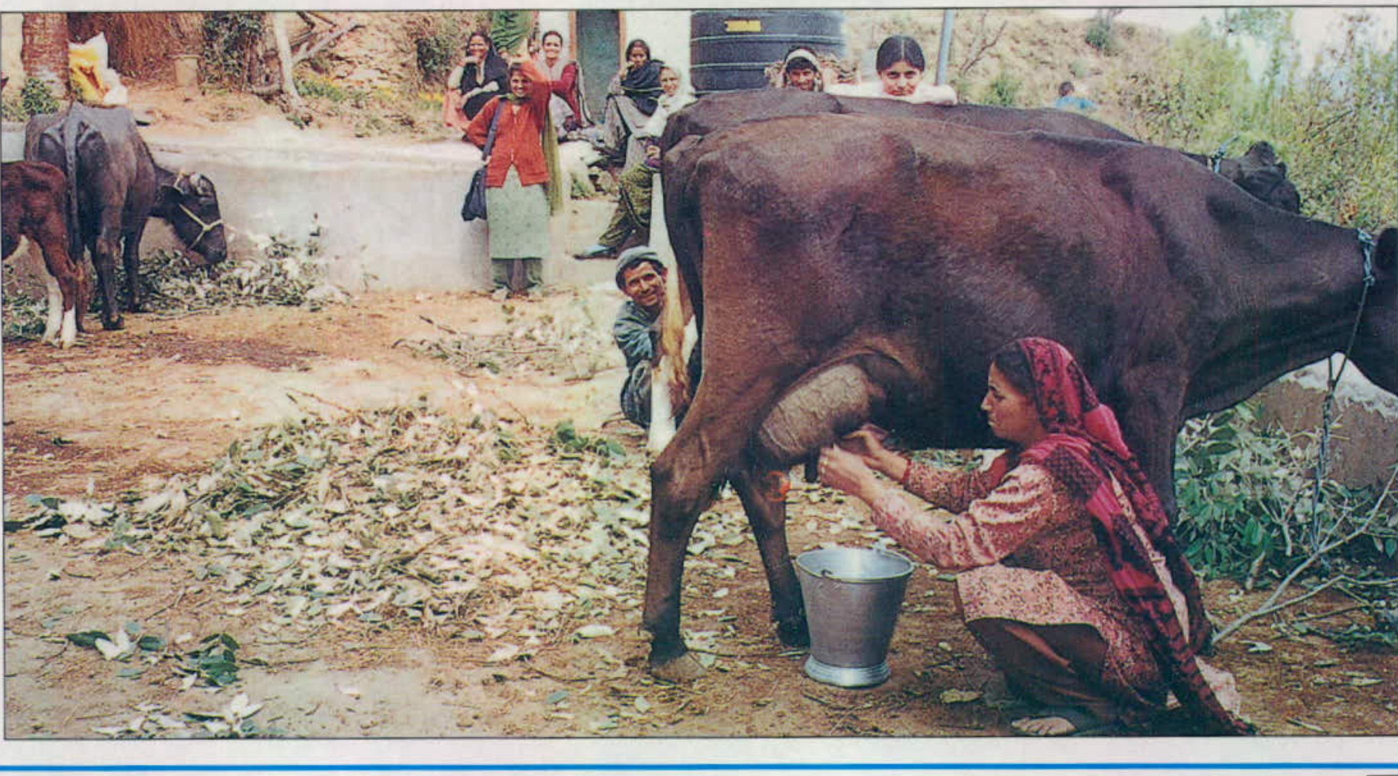

तालिका–1

भारत में पशुधन की प्रगति (करोड़ में)

पशु का नाम	गणना वर्ष				
	1956	1961	1966	1980	1996
गाय एवं बैल	15.90	16.76	17.61	18.25	19.6
भैंस एवं भैंसे	4.50	5.10	5.29	6.13	8.0
भेड़	3.90	4.00	4.20	4.13	4.5
बकरी	5.50	6.11	6.46	7.16	12.0
ऊंट, गधा	0.70	0.70	0.72	1.22	1.52
घोड़े एवं टट्टू	0.10	0.10	0.11	0.09	अप्राप्त
योग	30.60	32.77	34.30	36.9	44.2

और 61.0 करोड़ है। जबकि विश्व भर में इन पशुओं की संख्या क्रमशः 132.0, 15.2, 19.29, 104.8, 67.4 एवं 1295.2 करोड़ है। इस तरह भारत में इन पशुओं की संख्या विश्व की कुल संख्या का क्रमशः 14.8, 52.6, 7.9, 4.3, 17.8 एवं 4.7 प्रतिशत है, जो तालिका–2 से स्पष्ट है।

तालिका–2 से स्पष्ट है कि गाय और भैंसों की संख्या में भारत का विश्व में प्रथम स्थान है, जबकि बकरी में दूसरा एवं ऊंट पालन में तीसरा स्थान है। भेड़ तथा मुर्गा–मुर्गी पालन में भारत का विश्व में पांचवा स्थान है। सम्पूर्ण पशुधन संख्या की दृष्टि से भी भारत का विश्व में प्रथम स्थान है।

ग्रामीण विकास में पशुधन

पशुधन ग्रामीण आर्थिक विकास में अनेक तरह से अपनी भूमिका निभाता है। अभी भी भारत की कृषि में पशुओं की महत्वपूर्ण भूमिका है। बैल कृषि की आधारशिला है। कृषि संबंधी प्रत्येक कार्य में जितनी शक्ति की आवश्यकता पड़ती है उसकी पूर्ति बैलों द्वारा होती है। हमें बैलों से जुताई, बुआई, फसल ढुलाई, मढ़ाई एवं सिंचाई आदि कार्य करने में भी सहायता मिलती है। एक अनुमान के अनुसार कृषि में पशुश्रम का ही कुल मूल्य 300 से 500 करोड़ रुपये तक आता है।

पशुओं से हमें गोबर की प्राप्ति होती है इस गोबर का उपयोग उर्वरक, ईंधन और गैस बनाने सहित अनेक तरह से किया जाता है। गोबर से बने खाद से भूमि की उर्वरा शक्ति सदैव बनी रहती है। जबकि रासायनिक खादों से उर्वरा शक्ति क्रमशः समाप्त होती जाती है। गोबर की खाद से उपज के लिए मिट्टी में आवश्यक सभी तत्वों की प्राप्ति हो जाती है।

तालिका–2

भारत में पशुधन की स्थिति (1996 में)

पशु का नाम	भारत में पशुधन (करोड़ में)	विश्व में पशुधन (करोड़ में)	भारत का अंश (प्रतिशत में)	विश्व में भारत का स्थान
गोधन	19.6	132.0	14.8	प्रथम
भैंस	8.0	15.0	52.6	प्रथम
ऊंट	1.5	19.29	7.9	तृतीय
भेड़	4.5	10.8	4.3	पंचम
बकरी	12.0	67.4	17.8	द्वितीय
मुर्गा–मुर्गी	61.0	1295.2	4.7	पंचम

स्रोत – कृषि एवं सहकारिता मंत्रालय

पशु के सींग, खुर एवं हड्डियों का अस्थिचूर्ण बनाकर उसका कई तरह से उपयोग किया जाता है और उर्वरक भी तैयार किया जाता है। विशेषज्ञों के अनुसार उर्वरा शक्ति की वृद्धि के रूप में लगभग 270 करोड़ रुपये मूल्य की सामग्री हमें पशुओं से प्राप्त होती है।

दुधारू पशुओं से हमें जीवनदायी दूध की प्राप्ति होती है। दूध ही एक ऐसा पदार्थ है जो अपने आप में पूर्ण आहार है अर्थात दूध में भोजन के सभी आवश्यक तत्व पाए जाते हैं। गाय का दूध तो अमृत–समान माना गया है। बकरी के दूध को भी औषधि तुल्य माना गया है।

दूध से अनेक तरह के खाद्य पदार्थ बनाए जाते हैं। वैसे भारत में प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन मात्र 200 ग्राम दूध का उपयोग होता है जबकि चिकित्सकों के अनुसार प्रतिदिन प्रति व्यक्ति प्रतिदिन उपभोग की मात्रा 280 ग्राम होनी चाहिए। भारत में दुग्ध उत्पादन तथा प्रति व्यक्ति प्रतिदिन दुग्ध उपभोग का विवरण तालिका–3 में दिया गया है।

तालिका–3 से स्पष्ट है कि वर्ष 1951 से 1961 तक दुग्ध उत्पादन में निरंतर वृद्धि हुई जो 1966 में पुनः कम हो गई। किन्तु 1966 के बाद से दुग्ध उत्पादन में निरंतर वृद्धि होती जा रही है। कारण कि दुग्ध उत्पादन में वृद्धि के लिए हमारी सरकार अनेक योजनाएं चला रही है। वर्ष 1951 से 1982 के मध्य गाय एवं भैसों की संख्या में 71.85 प्रतिशत की वृद्धि हुई। जबकि इसी अवधि में दुग्ध उत्पादन में 95 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इसके बाद के वर्षों में इसमें और वृद्धि हुई है। 1970 में श्वेत क्रांति योजना लागू होने के पश्चात दुग्ध उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। श्वेत क्रांति के पूर्व दुग्ध उत्पादन 2.25 करोड़ टन था जबकि श्वेत क्रांति प्रथम, द्वितीय और तृतीय की समाप्ति पर दुग्ध उत्पादन बढ़कर क्रमशः 3.43, 4.15 एवं 6.50 करोड़ टन हो गया था। 1999–2000 तक यह उत्पादन बढ़कर 7.81 करोड़ टन हो गया। वर्तमान समय में भारत में प्रतिवर्ष दुग्ध उत्पादन में 5.5 प्रतिशत की वृद्धि हो रही है। यदि आगामी वर्षों में यही वृद्धिदर बनी रही तो वर्ष 2020 तक भारत में 22 से 25 करोड़ टन दूध का

तालिका–3
भारत में दुग्ध उत्पादन एवं प्रतिव्यक्ति दुग्ध उपभोग

वर्ष	दुग्ध उत्पादन (करोड़ टन)	प्रति व्यक्ति प्रतिदिन दुग्ध उपभोग (ग्राम में)
1950–51	1.74	132
1955–56	1.97	135
1960–61	2.04	127
1965–66	1.94	108
1971–72	2.25	112
1980–81	3.16	128
1981–82	3.43	130
1982–83	3.58	130
1983–84	3.88	135
1984–85	4.15	136
1985–86	4.40	140
1986–87	4.61	145
1987–88	4.67	156
1988–89	4.84	156
1989–90	5.14	165
1990–91	5.39	168
1991–92	5.57	170
1992–93	5.57	170
1994–95	6.40	180
1995–96	6.62	185
1996–97	6.91	185
1997–98	7.08	190
1998–99	7.41	200
1999–2000	7.81	211
2000–2001 (अनुमानित)	12.00	225

स्रोत : दुग्ध विभाग, कृषि मंत्रालय, 1999–2000, वार्षिक रिपोर्ट।

उत्पादन होने लगेगा, जबकि विश्वभर में इसी अवधि में 62 से 65 करोड़ टन दुग्ध उत्पादन होने का अनुमान है। इस तरह विश्व का एक तिहाई दूध भारत म उत्पन्न होगा।

भारत में, विशेष तौर पर ग्रामीण क्षेत्रों में यातायात के लिए पशुओं का भी उपयोग होता है। इंडियन इस्टीच्यूट आफ मैनेजमेंट, बंगलौर के एक शोध के अनुसार भारत में 1.5 करोड़ बैलगाड़ियां हैं। ये बैलगाड़ियां भारतीय रेलों द्वारा वहन करने वाले भार से भी अधिक बोझ ढोती हैं। बैलगाड़ियों द्वारा ऊर्जा की विशेष बचत होती है। बैलगाड़ी उद्योग में लगभग 4,000 करोड़ रुपये की पूंजी का समावेश है। यही नहीं, तेल चालित लोकवाहनों में 2 हजार करोड़ रुपये की पूंजी लगी हुई है जिससे 2 करोड़ लोग अपनी रोजी–रोटी चलाते हैं। बैलगाड़ी के अलावा घोड़े, ऊंट, भैंस और खच्चर भी माल एवं सवारी के परिवहन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। ऊंट को तो रेगिस्तान का जहाज कहा गया है।

अनेक उद्योगों की आधारशिला भी पशु ही हैं जैसे – चमड़ा उद्योग, ऊन उद्योग, वस्त्र उद्योग, मांस उद्योग, डेरी उद्योग आदि। स्पष्ट है कि ये उद्योग हमारे दैनिक उपयोग से संबंधित हैं, जिनके बिना हमारे जीवन में अनेक तरह की कठिनाइयां उत्पन्न हो सकती हैं। इन उद्योगों से हमें पर्याप्त विदेशी मुद्रा भी प्राप्त होती है। ये उद्योग घरेलू उद्योग के रूप में भी हैं, जिस पर हमारे ग्रामीण क्षेत्रों में कई लोगों की गुजर–बसर होती है। प्रायः ये ही उनके अर्थोपार्जन के मुख्य स्रोत हैं।

पशुओं से हमें विदेशी मुद्रा अर्जन करने में भी विशेष सहायता मिलती है। पशु उत्पादन से निर्मित पदार्थों का विदेशों में निर्यात होता है। खास तौर से विदेशों को भारतीय चमड़े से बने जूतों तथा ऊनी वस्त्र आदि का निर्यात किया जाता है।

इसी तरह हमारी राष्ट्रीय आय में भी पशुधन का विशेष योगदान होता है। कुल राष्ट्रीय आय का लगभग आठ प्रतिशत हमें पशुधन से प्राप्त होता है। दूसरे शब्दों में, हमारे कुल राष्ट्रीय आय का लगभग 50 प्रतिशत कृषि क्षेत्र से प्राप्त होता है जिसका 20 प्रतिशत पशुओं से ही मिलता है।

पशुधन रोजगार के अवसर भी प्रदान कर सकते हैं। 800 करोड़ रुपये के विनियोग से जहां रासायनिक उर्वरक कारखाने में 800 व्यक्तियों को रोजगार मिल सकता है वहीं गौ–संवर्धन के अंतर्गत 56,000 व्यक्तियों को रोजगार के अवसर प्राप्त हो सकते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत के ग्रामीण आर्थिक विकास ही नहीं, अपितु सर्वांगीण विकास में पशुपालन व्यवसाय अपनी अहम भूमिका निभा सकता है।

पशुपालन व्यवसाय पिछड़ने के कारण

यद्यपि भारत में पशु पर्याप्त संख्या में हैं किन्तु पशुपालन व्यवसाय इतना पिछड़ा है कि यहां के दुधारू पशुओं में दूध की मात्रा यूरोपीय देशों की तुलना में बहुत कम है। नार्वे, स्वीडन एवं आयरलैंड आदि देशों में तो कुल राष्ट्रीय आय का 80 प्रतिशत पशुधन से ही प्राप्त होता है, जबकि भारत में यह केवल 18 प्रतिशत ही है।

भारत में पशुपालन व्यवसाय के पिछड़ा

होने और उसके स्तर में गिरावट के मुख्य कारण अनुपयोगी पशुओं का अधिक संख्या में होना, किसान की निर्धनता, आवश्यकता से अधिक पशु रखने की मजबूरी, अच्छी नस्ल के पशुओं का न होना, उत्तम चारे का अभाव, दोषपूर्ण अभिजनन क्रिया और पशुओं के रखने हेतु अस्वास्थ्यकर स्थानों का होना है। रोग एवं बीमारियों का उचित इलाज न होना, पशुओं के क्रय–विक्रय के लिए उचित बाजार का अभाव, अशिक्षा के कारण लाभकारी एवं अलाभकारी पशुओं में पूर्ण भेद न कर पाना, चरागाह की कमी, पूंजी के अभाव में अच्छी नस्ल के पशु न खरीद पाना और पशुपालन व्यवसाय के प्रति सरकार की उदासीनता भी महत्वपूर्ण कारण हैं जिनके चलते भारत में पशुपालन व्यवसाय पनप नहीं पा रहा है।

पशुपालन व्यवसाय की उन्नति हेतु सुझाव

पशुपालन व्यवसाय में उन्नति करने हेतु सबसे आवश्यक है कि सरकार इस पर पूरा ध्यान दे और इसे उद्योग का दर्जा प्रदान कर उद्योग की तरह ही इसे सुविधाएं प्रदान करे ताकि पशुपालन व्यवसाय में लगे लोग मनोयोग से कार्य कर सकें और अन्य लोग भी पशुपालन व्यवसाय से जुड़ सकें।

पशुपालन व्यवसाय में सुधार हेतु यह भी आवश्यक है कि उत्तम चारे की व्यवस्था की जाय तथा सरकार को चाहिए कि ग्रामसभा स्तर पर चरागाह के लिए पर्याप्त स्थान का अधिग्रहण कर उसमें ग्रामसभा को उत्तम प्रकार का चारा लगाने के लिए प्रेरित करे अथवा पशुपालन व्यवसाय में लगे लोगों को उत्तम चारा बनाने हेतु प्रोत्साहन करे।

जो बेकार पशु हैं अथवा कम उपयोग के हैं, उनके स्थान पर उत्तम नस्ल के पशुओं को रखा जाए और साथ ही साथ देसी नस्ल की गाय, भैंसों को विकसित नस्ल के सांढ़–भैसों से गर्भादान कराया जाए, ताकि उनसे उत्तम और दुधारू पशु प्राप्त हो सकें।

पशुओं के रहने हेतु उत्तम प्रकार के बाड़ की व्यवस्था की जाए एवं उनकी समय–समय पर जांच–परख भी होती रहे, ताकि उनमें होने वाले रोगों का पता लगाया जा सके जिनका तत्काल निदान किया जा सके।

समय–समय पर पशु प्रदर्शनियों और मेलों का आयोजन करवाकर उसमें पशुपालन व्यवसाय में लगे दक्ष लोगों को पुरस्कृत किया जाना चाहिए जिससे उनका मनोबल बढ़े और अन्य लोग भी अपनी रुचि दिखा सकें।

पत्र–पत्रिकाओं, रेडियो, दूरदर्शन आदि जैसे प्रचार माध्यमों से पशुपालन व्यवसाय से होने वाले लाभों को आम जनता से परिचित कराना चाहिए, ताकि वे व्यवसाय के प्रति आकर्षित हों। पशुपालन व्यवसाय में लगे लोगों की सहकारी समितियां गठित कर उनके माध्यम से ही पशु उत्पादकों के लिए बाजार में विक्रय आदि की व्यवस्था हो ताकि बिचौलिए अपनी टांग न अड़ा सकें।

दुधारू पशुओं से हमें जीवनदायी दूध की प्राप्ति होती है। दूध ही एक ऐसा पदार्थ है जो अपने आप में पूर्ण आहार है अर्थात दूध में भोजन के सभी आवश्यक तत्व पाए जाते हैं। गाय का दूध तो अमृत–समान माना गया है। बकरी के दूध को भी औषधि तुल्य माना गया है।

पशुओं के क्रय–विक्रय के लिए भी समय–समय पर उचित व्यवस्था होनी चाहिए। यह कार्य भी सहकारी विपणन व्यवस्था के अंतर्गत किया जा सकता है। इनके अतिरिक्त सबसे अधिक आवश्यक है संरक्षा और सहायता। यद्यपि पशुपालन व्यवसाय को हमारे संविधान के मुख्य सिद्धांतों में स्थान दिया गया है और संभवतः इन्हीं सिद्धांतों के परिपालन में हमारी सरकार ने विभिन्न योजनाओं में पशुपालन व्यवसाय पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया और पर्याप्त धन की व्यवस्था भी की है। यह तालिका–4 से स्पष्ट है।

पशुपालन व्यवसाय और पशुधन की उन्नति के लिए सरकार द्वारा अनेक कार्यक्रम भी चलाए जा रहे हैं। इनमें सघन मवेशी विकास कार्यक्रम, अखिल भारतीय आधार ग्राम योजना, चारा एवं पोषण विकास योजना, गौशाला विकास योजना, गौसदन योजना, बछड़ा पालन योजना, केन्द्रीय पशुपालन संस्थान की स्थापना, भ्रमणशील जंगली पशुओं को पकड़ने की योजना, खाल उतारने, चमड़ा कमाने एवं पशु शवों के उपयोग की योजना, राष्ट्रीय पशु सम्पदा समिति का गठन, पशु कल्याण मंडल का गठन और महत्वपूर्ण आंकड़ों के लिए नमूना सर्वेक्षण कार्यक्रम मुख्य हैं।

तालिका–4
पशुपालन हेतु विभिन्न योजनाओं में व्यय का प्रावधान

योजना	व्यय (करोड़ रुपये में)
प्रथम योजना	8
द्वितीय योजना	67
तृतीय योजना	87
तीन वार्षिक योजनाएं	40
चतुर्थ योजना	135
पंचम योजना	338
षष्ठम योजना	851
सप्तम योजना	1077
अष्टम योजना	1285
नवम योजना	1570

विभिन्न योजनाओं के तहत पशुपालन व्यवसाय की प्रगति हेतु सकल मवेशी विकास परियोजनाएं, जमे हुए वीर्य केन्द्र, सघन भेड़ विकास परियोजनाएं, सघन अंडा और मुर्गीपालन उत्पादन सह–विपणन केन्द्र, पशु अस्पताल एवं डिस्पेंसरियां तथा तरल दुग्ध कारखानों हेतु अलग–अलग परिव्यय का निर्धारण कर इनका विकास किया जा रहा है।

स्पष्ट है कि सरकार पशुपालन व्यवसाय की उन्नति हेतु विशेष प्रयत्नशील है और यही कारण है कि इसमें उत्तरोत्तर विकास हो रहा है। इससे हमारे आर्थिक स्तर में सुधार होगा और ग्रामीण आर्थिक ढांचा सुदृढ़ होगा जिससे समन्वित ग्रामीण विकास का मार्ग प्रशस्त होगा। ❑

रीडर, भूगोल विभाग
स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
दूबेछपरा, बलिया
(उ.प्र.)

आरोप

अमरेन्द्र कुमार

सुबह उठने के बाद चाय पीते हुए जब अखबार पर नजर पड़ी तो मैं अवाक रह गया। खबर मेरे दफ्तर की ही थी। मैं कल दफ्तर नहीं गया था। अस्वस्थता के कारण अवकास पर था। खबर का सारांश यह था कि दफ्तर का एक भूतपूर्व क्लर्क श्याम प्रसाद देशी पिस्तौल के साथ पकड़ा गया। उसने प्रबंधक की जान लेने की कोशिश की थी, लेकिन नाकाम रहा।

दफ्तर में श्याम प्रसाद मेरा बहुत करीबी था। उसे दफ्तर से एक माह पूर्व हटा दिया गया था और वह दूसरी जगह नौकरी की तलाश कर रहा था। अभी उसकी उम्र ही क्या है, कोई 28 वर्ष। पास के एक गांव में उसका घर था, जहां से वह रोज साइकिल से आया करता था। घर में उसकी पत्नी और तीन साल की एक बिटिया थी। वह अपने इस छोटे-से परिवार के साथ बहुत खुश था। दफ्तर में परिश्रम के साथ काम करता और शाम को घर लौटता, तो अपने परिवार के साथ शाम बिताता। कोई बुरी आदत नहीं। न और लोगों की तरह किसी दूसरे के घर जाकर चुगली या निन्दा करना और न कम कर्मचारी के कारण अपने ऊपर काम के अधिक बोझ होने की शिकायत। लेकिन जब दफ्तर का कोई आदमी अपने अधीनस्थ कर्मचारी को परेशान करता या प्रबंधन किसी को नाजायज तरीके से हटाता, तो वह उसका विरोध करता। हालांकि उसके विरोध का कोई सार्थक परिणाम नहीं निकलता, लेकिन वह विरोध करने से बाज नहीं आता था। वह नरम, निष्पाप और अबोध-सा युवक था।

लगभग छह महीने पूर्व प्रबंधक ने जब श्रीवास्तव के स्थानांतरण का निर्णय लिया, तो श्याम प्रसाद ने विरोध किया। श्रीवास्तव की मजबूरियों की फरियाद लेकर वह अपने खर्च से लखनऊ चला गया था वहां उसने प्रबंध निदेशक से मुलाकात की और उनका स्थानांतरण रोक दिया गया।

उसने कहा था, 'श्रीवास्तव की बच्ची बीमार रहती है। उनकी पत्नी का देहांत हो चुका है। बूढ़ी मां अस्वस्थ होने के बावजूद उसकी देखभाल करती है। आखिर श्रीवास्तव साहब रांची कैसे रह सकते हैं?' उसकी फरियाद प्रबंध निदेशक ने सुन ली थी और श्रीवास्तव का स्थानांतरण रुक गया था। यह लोगों को सपने जैसा लगा था। लेकिन यह एक ऐसा सपना था, जो हकीकत की जमीन पर मूर्त होकर खड़ा था।

इस बात की सबने तारीफ की थी और श्याम प्रसाद की हिम्मत की दाद दी थी। हिम्मत इसलिए कि उस संस्थान में प्रबंधक के निर्णय के खिलाफ किसी को जुबान तक हिलाने की इजाजत नहीं है। अगर प्रबंधक के मन में किसी के प्रति गलत धारण बनी, तो उसकी छुट्टी हो गई। वह एक पल में ही दफ्तर का सबसे अयोग्य और कामचोर आदमी समझा जाने लगता था। फिर क्या कहने दोस्तों के! जो रोज–रोज चाय पीते थे, वे भी कतराने लगते। उसके साथ हंसने–बोलने में भी कांप उठते। मित्रता की भावना दम तोड़ देती है। सबके मन में यही खौफ होता है कि कहीं प्रबंधक को मित्रता की बात का पता न चल जाए। फिर कौन जाने उसके सिर पर विपत्ति किस शक्ल में टूट पड़े। इस संस्थान की पूरे भारत में ग्यारह शाखाएं हैं। कब किसका कहां स्थानांतरण कर दिया जाए, कोई जानता नहीं। वह छटपटा जाएगा और या तो उसे नौकरी छोड़नी पड़ेगी या स्थानांतरण की तरद्दुद उठानी पड़ेगी। उस पर किसी तरह का आरोप भी लगाया जा सकता है और उसकी नौकरी गैस–भरे गुब्बारे की तरह हाथ से निकल सकती है। यहां कोई यूनियन तो है नहीं कि नौकरी के लिए लड़ेगी।

श्याम प्रसाद ने जब से श्रीवास्तव का स्थानांतरण रुकवाने में कामयाबी पाई थी, तभी से वह प्रबंधक की आंख की किरकिरी बन गया था। चूंकि वह प्रबंध निदेशक से मिलकर आया था, इसलिए प्रबंधक उसे नौकरी से हटाने में अपने को असमर्थ पा रहे थे। लेकिन प्रबंधक उसे दूसरे ढंग से परेशान करने से बाज नहीं आते। उस पर काम का बोझ लाद देते। कभी उसे किसी बात पर डांट–फटकार लगाते। श्याम प्रसाद के पास चुप रहने के अलावा कोई उपाय नहीं था। ज्यादा काम होने पर भी उसे कोई परेशानी नहीं होती। वह हंसते–हंसते सब काम निपटा देता। उसके माथे पर शिकन तक नहीं आती।

वह प्रबंधक से कभी–कभी दूसरों की समस्याएं लेकर मिलता था। किसी के बच्चे या पत्नी की तबीयत खराब हो, तो इलाज के लिए अग्रिम देने के लिए जोर डालता, कभी किसी को छुट्टी नहीं मिलती, तो बड़े नम्र स्वर में छुट्टी की अनिवार्यता की बात कहता। लोग उसके पास जाते और वह मदद करने के लिए तैयार हो जाता। श्याम प्रसाद दूसरों की मदद करता, लेकिन जिन लोगों की वह मदद करता, वे ही कहते कि श्याम प्रसाद का पत्ता एक दिन यहां से कट जाएगा।

वह हंसता और विनम्र स्वर में कहता, 'लेकिन मैं कुछ गलत तो नहीं करता। इस तरह होंठ सी कर रहना क्या उचित है, सर?' वह उल्टे मुझसे ही सवाल कर देता और मैं चुप हो जाता।

मैंने एक दिन समझाते हुए कहा, 'श्याम, तुम दूसरों की तकलीफ सुनकर पिघल जाते हो और सहायता के लिए आगे–आगे कूदने लगते हो। क्या तुम इसका नतीजा जानते हो? तुम यहां की संस्कृति से अवगत हो, फिर भी खतरा क्यों मोल लेते हो? अपने काम से काम रखो।'

वह हंसता और विनम्र स्वर में कहता, 'लेकिन मैं कुछ गलत तो नहीं करता। इस तरह होंठ सी कर रहना क्या उचित है, सर?'

वह उल्टे मुझसे ही सवाल कर देता है और मैं चुप हो जाता। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि श्याम जो भी करता है, वह कहीं से गलत नहीं है। अपने मित्रों के लिए उसमें सद्भाव–स्नेह है, तो इसमें बुराई क्या है! फिर इस तरह डर–डर कर जीना भी तो नहीं चाहिए। प्रबंधक की नादिरशाही क्यों चलेगी? उन्हें तो किसी तरह का कष्ट है नहीं। हर महीने सारे भत्तों आदि को मिलाकर लगभग चालीस हजार रुपये मिलते हैं। उपर से दफ्तर के सामान की खरीदारी में हजारों रुपये बनाते हैं। यह बात सभी जानते हैं। लेकिन किसी की हिम्मत नहीं कि कभी चोरी–छुपे भी इसकी चर्चा करे। आफत कौन मोल ले? प्रबंधक के विरोध की बात तो आपदा है, लोग उनके तलवे सहलाते हैं। उनकी खुशामद करने के लिए भी दफ्तर के कर्मचारी तरसते रहते हैं। बच्चे की बर्थडे पार्टी हो या उनकी शादी की वर्षगांठ, दफ्तर के उनके प्रिय सुबह–शाम दरवाजे पर जुटे रहते हैं। हाथों–हाथ काम बांट लेते हैं। इस मौके के लिए दफ्तर के कई कर्मचारी तरसते रहते हैं, लेकिन वे खुशनसीब समझे जाते हैं, जिन्हें सेवा–खिदमत का अवसर प्राप्त होता है। प्रबंधक के संपर्क का दायरा भी व्यापक था। खास–खास मौके पर शहर के प्रतिष्ठित लोग आते। एस.पी., डी.एम. के अलावा चुनिंदा राजनीतिज्ञ भी होते। सबके मन में यही भावना रहती कि इस मौके पर सक्रिय रहने से नगर के संभ्रांत लोगों से भी हल्का परिचय हो जाएगा। कभी किसी से सहायता भी ली जा सकती है। दूसरी बात यह थी कि प्रबंधक के प्रिय पात्रों को कई तरह से आर्थिक लाभ मिल जाते हैं, प्रोन्नति का दरवाजा भी आसानी से खुल जाता है।

श्याम प्रसाद प्रबंधक के घर पर ड्यूटी बजाने वाले लोगों पर व्यंग्य–बाण छोड़कर मजा लेता। मैं उसकी इस आदत पर कभी–कभी खीज उठता, क्योंकि मैं जानता था कि उनमें से कोई–न–कोई प्रबंधक से चुगली कर देगा और नतीजतन उसे बेकार होकर दर–दर भटकना पड़ेगा। आज के जमाने में नौकरी मिलती ही कहां है!

उसे समझाने के पीछे कारण भी था। उसे नौकरी दिलाने में मेरी भूमिका महत्वपूर्ण थी। वह आवेदन पत्र देने के बाद इंटरव्यू के पहले मुझसे मेरे मित्र राम बाबू के साथ मिला था। राम बाबू ने उसकी ईमानदारी और मेहनत की काफी तारीफ की थी, और यह भी बताया था कि श्याम अनाथ था, उन्होंने ही उसे पढ़ाया–लिखाया और शादी कराई थी।

उन्होंने कहा था, 'यह दो वर्षों से नौकरी

के लिए अर्जियां दे रहा है। लेकिन आज के जमाने में नौकरी मिलती ही कहां है। मैं भी रिटायर हो चुका हूं। अब तो इसका बोझ मुझसे नहीं संभाला जाता, ऊपर से इसके पत्नी और एक बच्ची भी है।

मैंने राम बाबू को आश्वासन दिया कि प्रबंधक से बात करूंगा और भरपूर कोशिश करूंगा। मैंने प्रबंधक से निवेदन किया और उन्होंने मेरी सुन ली थी।

यही कारण है कि उसके प्रति मेरे मन में गहरी आत्मीयता थी। नौकरी उसकी थी, लेकिन मैं हमेशा यही चाहता था कि वह कुछ ऐसा न करे कि उसकी नौकरी चली जाए। जब किसी के प्रति हमारे मन में सहानुभूति का भाव पैदा हो जाता है, तो उसके प्रति हमारे मन के पेड़ में प्रेम–दुलार की कोमल पत्तियां उग आती हैं। अगर वह संकट में पड़ जाता है, तो बहुत दुःख होता है।

इस संस्थान का यह नियम है कि नियुक्ति पत्र देने के साथ–साथ त्यागपत्र भी लिखवा लिया जाता है। श्याम प्रसाद को भी नियुक्ति पत्र दिया गया, तो साथ–साथ त्यागपत्र भी लिखवा लिया गया। शाम को जब वह मेरे घर आया, तो पैर स्पर्श करने के बाद उसने कहा, 'सर, नियुक्ति पत्र तो मिल गया, लेकिन साथ–साथ त्यागपत्र भी लिखवा लिया गया।'

'यहां ऐसा ही होता है, श्याम बेटे! जाओ, तुम नौकरी करो। मेरी शुभकामनाएं!'

'सर, किसी बेरोजगार आदमी की मजबूरी का इस तरह नाजायज फायदा उठाया जाता है। अब किसी की नौकरी लेनी होगी, तो वह विरोध भी नहीं कर सकता है। उसकी गर्दन पर तो हमेशा तलवार लटकती रहेगी। कभी भी गर्दन काटी जा सकती है।'

मैंने उसे समझाते हुए कहा, 'अन्याय, अत्याचार और शोषण की बात करने से नौजवानों का खून खौलता है, सोचने से भी उनके मन में आक्रोश उबलता है। इसलिए यह सब मत सोचो। प्राइवेट कम्पनियों में इन सारी बातों–परिस्थितियों से समझौता कर ही नौकरी की जा सकती है। चुपचाप कल से काम शुरू कर दो।'

उसने काम शुरू कर दिया, लेकिन किसी अनुचित बात पर वह 'रिएक्ट' जरूर करता था। इसका बुरा नतीजा तो सामने आना ही था। लेकिन दो साल में ही उसकी नौकरी जाती रहेगी और फिर वह बेकार होकर सड़क पर आ जाएगा, ऐसा मैंने कभी नहीं सोचा था।

उसे प्रबंधक की चोरी का कोई लिखित प्रमाण मिल गया था। इसकी चर्चा उसने अपने दोस्तों से कर दी और उस प्रमाण को रजिस्ट्री डाक से प्रबंध निदेशक के पास भेज दिया था। इस बात का जब मुझे पता चला, तो मैं उस पर बिगड़ उठा था, 'तुमने क्यों रजिस्ट्री प्रबंध निदेश्क के पास भेजी?'

वह आश्चर्यचकित नेत्रों से मेरी ओर देखने लगा और बोला, 'चुप भी कैसे रहूं, सर? इससे तो संस्थान का भारी अहित हो रहा था। लगभग दस हजार रुपये प्रबंधक की जेब में जाते हैं और हमलोगों को तीन साल से बोनस भी नहीं मिला है। प्रबंधक कहते हैं कि संस्थान घाटे में चल रहा है।'

मैंने गुस्से में कहा, 'तुम सुधारक तो नहीं हो। तुम्हारा काम है दफ्तर में काम करना, न कि जासूसी करना और अपने से बड़े अधिकारियों की चोरी पकड़ना।'

'अब तो मैंने यह सब कर दिया है, सर!.. और जो कुछ किया है, ठीक ही किया है।'

मैं उसे ठीक से समझा नहीं पाया था। उसके अक्खड़ स्वभाव के आगे मेरी एक नहीं चली। हालांकि मेरे मन में उसके इस सुधारवादी संकल्प के लिए इज्जत का भाव भी था, लेकिन उसके अहित की आशंका से मैं बेचैन भी हो गया था।

एक महीने के बाद वही बात हुई, जिसकी आशंका मेरे मन को बार–बार भयभीत कर रही थी। उसका त्यागपत्र अचानक स्वीकार कर लिया गया था। एक महीने का बकाया वेतन भी नहीं दिया गया था उसे। वह वेतन के लिए बार–बार प्रबंधक के पास दौड़ता रहता था। एक दिन जब सख्त स्वर में उसने अपना बकाया वेतन मांगा, तो प्रबंधक ने उसे दूसरे दिन, यानी कल बुलाया था और कहा था, 'आज तो कैश में रुपये नहीं हैं। कल दो बजे मेरे केबिन में ही आ जाना। यहीं वेतन मिल जाएगा।'

आज उसकी गिरफ्तारी की खबर पढ़कर मैं सन्न रह गया। यह क्या किया श्याम ने। अब तक तो उसे जेल में चालान कर दिया गया होगा। उसकी जमानत भी शायद ही हो।

जल्दी–जल्दी तैयार होकर मैं सेंट्रल जेल पहुंचा। उससे मिलने के लिए पर्ची कटवाई। सिपाही को जल्दी मुलाकात कराने के लिए तीस रुपये भी दिए। फिर भी यह डर बना हुआ था कि कहीं दफ्तर का कोई आदमी देख न ले। देख लेगा तो मेरी नौकरी भी चली जाएगी। मेरा त्यागपत्र भी स्वीकार कर उसकी एक प्रति मेरे हाथ में थमा दी जाएगी। इस उम्र में मुझे नौकरी मिलेगी कहां! बाद में सामने आने वाली तकलीफों, विपत्तियों और तनावों की आशंकाएं अंधड़ की तरह मन में दिखाई पड़ने लगीं, लेकिन दूसरी ओर स्नेह और इनसानी रिश्ते की चीख की भी मैं अनसुनी नहीं कर सकता था। वह चीख कानों से दिल में समा रही थी।

पांच मिनट तक सेंट्रल जेल के गेट पर इंतजार करने के बाद श्याम प्रसाद आया। मेरी आशा के विपरीत वह खुश था। उसकी आंखों में न उदासी थी और न कुछ गलत करने का पश्चात्ताप।

मैंने पूछा, 'यह क्या किया तुमने, श्याम?'

'सर, क्या आपको भी विश्वास है कि मैं यह सब कर सकता हूं? मैं तो वेतन लेने के लिए प्रबंधक के पास गया था, वहां एक जमादार पहले से ही कमरे के बाहर बैठा था। कमरे के अंदर गिरीश और उपाध्याय थे। मेरे घुसते ही दोनों ने जोर से पकड़ लिया।..... और मैं अब जेल में हूं।'

मेरी आंखें छलछला आईं। मैं आंसुओं के प्रवाह को रोक नहीं सका। मेरा हाथ खुद–ब–खुद उसके सर पर पहुंच गया। मुझे लगा कि मैं आशीर्वाद दे रहा हूं उसे।

'यह क्या सर? मैं खुश हूं। आपकी आंखों में आंसू देखकर मुझे दुःख होगा।'

मैंने घड़ी देखी। दफ्तर के लिए देर हो रही थी। मैं चाहकर भी रुक नहीं सकता था। इधर–उधर नजर दौड़ायी..... कहीं कोई देख तो नहीं रहा है, तेजी से निकल पड़ा। ❑

जनविक्रांत
गांधीपथ,
सासाराम–821115

तीन कविताएं

दिनेश अनिकेत

पकी रोटियों के गीत

रोटियां
जब पाती हैं गोलाई
उलटती–पलटती हैं आंच पर
जब उग आते हैं उनकी
पीठ पर पकने के दाग
रोटियां गाती हैं गीत
रोटियों के गीत सुनते हैं
भूखे–नंगे बच्चे
गाते हैं सुर में सुर मिलाकर
भूख से बिलबिलाते बच्चे
सहज नहीं मानते
कि कहीं होते होंगे इतने अनाज
कि रखने को कम पड़ जाती होगी
बखारी
वे यह भी नहीं मानते कि
भूख मिट पाती है कभी पूरी तरह
भूखे बच्चों के लिए
विश्वास का आधार होती हैं
रोटियां

रोटियां गाती हैं
असंख्य तालों में निबद्ध
आरोह–अवरोह के साथ
घर–बार, कल–कारखाने
बहस, गोष्ठियां
शहनाई, पखावज
आशाएं, इच्छाएं, उमंग और
अनेक ऐसी चीजें
रोटियों के सृजन हैं सभी

रोटियों के लिए
न तो अमरीका नया है, न सूडान
न महारानी एलिजाबेथ न ब्रुनेई का सुल्तान
न अंग्रेज नए हैं, न फ्रांसिसी
न तो बेगम अख्तर और न ही रमुआ कहार
उसके लिए दुनिया नई नहीं है
दुनिया के तमाम हिस्सों में
पकायी जाती हैं रोटियां और
तमाम हिस्सों में
रोटियां रचती हैं नए–नए संगीत
दुनिया की तमाम धुनों को
गाती हैं रोटियां
सुनते, झूमते हैं भूखे–नंगे बच्चे जहां वे हैं
गाते हैं सुर में सुर मिलाकर।

पिताओं के कर्म

पिताओं ने की कमैनी
पटाया खेतों को
भाड़े के करीने से
पिताओं ने नहीं लगाया कभी
खेतों पर अंगूठे का निशान
पिताओं के दुख को/ढोते हैं पिता
पसीने से गंधाते बनियान की तरह
धूप में सूखते हैं
भाप बन कर उड़ जाते हैं
पिताओं के कर्म।

कुहासे की गंध

ब्रह्मवेला में जगे
कुहासा छाया था तब
हमारे बीस कदम आगे
मकान नहीं थे
न सड़क थी, न झोपड़ियां
हमारे चलने से
कदम–दर–कदम
बढ़ रही थी दुनिया

रास्ते में एक दोस्त मिला
लगभग टकराता हुआ
बताया उसने
शहर में नहीं होता ऐसा
लाख हो धुंध
खम्बों पर लगे बल्ब में
दिखता है सब कुछ
पीली रोशनी धुंध काटती है

खेतों तक निकल आया था मैं
ओस में नहाए थे गेहूं के पौधे
शीत की लहर को पी रही थीं बालियां
जैसे पी रही थी हमारा देह
सांसों में फैली थी
कुहासे की गंध
जैसे फैली थी दूब की जड़ों में

सूर्योदय के बाद
हम लौटे घरों को
धीरे–धीरे लौट आई दुनिया
मकान, सड़क और झोपड़ियां
पिता चाहते थे फसल–कटनी
अम्मा को चाहिए थी लकड़ी
भोजन सिंझाने के लिए
जरूरी थी चू रहे छत की मरम्मत
बीत गई रोशनी, उजास
सांझ तक बाकी रहे कई काम

ब्रह्मवेला में जगे कुहासा छाया था तब
खेतों तक निकल आया था मैं
जुट गया था
कटी बालियों को समेटने में
सांसों में फैली थी
कुहासे की गंध
जैसे फैली थी दूब की जड़ों में ❑

ग्रा–पो. मानिक चौक (पछियारी टोला)
जिला – सीतामढ़ी, बिहार
पिन–843323

रोजगार और गरीबी पर उदारीकरण के प्रभाव

डा. आफताब अहमद सिद्दीकी

देश में आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया आरम्भ हुए दस वर्ष पूरे हो गए हैं। यद्यपि इन दस वर्षों की अवधि इतनी लंबी नहीं है कि इस दौरान हुए आर्थिक सुधारों के प्रभाव को आंका जा सके, किंतु यह इतनी छोटी भी नहीं है कि इसका मूल्यांकन ही न किया जाए। इस कारण उदारीकरण की नीति का रोजगार एवं गरीबी पर क्या प्रभाव पड़ा है इस बात का मूल्यांकन करने का प्रयास प्रस्तुत लेख में किया गया है।

स्वतंत्रता–प्राप्ति के पश्चात तत्कालीन सोवियत संघ से प्रेरणा लेकर अपनाई गई आयोजन प्रक्रिया ने देश में सामाजिक और आर्थिक आधार संरचना कायम की है। इससे भारी तथा मूल उद्योगों के विकास को प्रोन्नत कर औद्योगिक आधार स्थापित किया जा सका और देश में शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधा का विस्तार हुआ। किंतु यह प्रक्रिया प्रत्येक योग्य व्यक्ति को रोजगार उपलब्ध कराने में विफल रही है। यह गरीबी को दूर करने में सफल नहीं हुई है और न ही आय एवं संपत्ति के संकेंद्रण को कम करने में कामयाब हुई है। इन सब कारणों को ध्यान में रखकर सन् 1991 से आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया आरम्भ की गई। सन् 1991 में उदारीकरण तथा वैश्वीकरण की नीतियों को लागू करते वक्त जनता को कई सब्जबाग दिखाए गए थे, जिनमें से एक यह भी था कि उदारीकरण की नीति के फलस्वरूप नए उद्योग–धंधे खुलेंगे और रोजगार के अवसर भी बढ़ेंगे। किन्तु एक दशक के वैश्वीकरण एवं उदारीकरण ने देश में रोजगार और गरीबी की समस्या को एक परिवर्तित रूप दे दिया है। जो लोग गरीब थे, उनमें से बहुत कम लोग ही गरीबी–रेखा से ऊपर उठ पाए हैं जबकि छोटे उद्योगों के मजदूर बड़ी संख्या में उद्योगों के बीमार होने तथा सीमांत किसान अपने उत्पादकों के वाजिब दाम न मिलने के कारण गरीबों की जमात में शामिल हो गए हैं। अर्थव्यवस्था के संगठित क्षेत्र (सार्वजनिक एवं निजी दोनों) में 1980 के दशक के उत्तरार्द्ध में रोजगार वृद्धि की दर 1.7 प्रतिशत थी। यह घटकर वर्ष 1991–92 में 1.44 प्रतिशत और वर्ष 1992–93 में 0.04 प्रतिशत रह गई। श्रम मंत्रालय के नवीनतम आंकड़ों के अनुसार इस क्षेत्र में वर्ष 2000 में

रोजगार वृद्धि दर –0.15 प्रतिशत रही है। इसका आशय है कि इस वर्ष लगभग 45,000 रोजगार घट गए हैं जबकि उदारीकरण के पूरे दशक में यह 0.73 प्रतिशत के लगभग रही। उदारीकरण के पिछले दस वर्षों में की रोजगार वृद्धि दर तथा कुल रोजगार को तालिका–1 में दर्शाया गया है।

तालिका–1
उदारीकरण के दौरान रोजगार वृद्धि दर और कुल रोजगार

वर्ष	रोजगार वृद्धि दर	कुल रोजगार (लाख में)
1991	1.44	267.53
1992	1.21	270.76
1993	0.44	271.95
1994	0.73	273.94
1995	0.55	275.45
1996	1.51	279.60
1997	1.09	282.12
1998	0.46	283.42
1999	0.04	284.55
2000	–0.15	284.12

स्रोत : श्रम मंत्रालय, नई दिल्ली, 2001

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने विश्व रोजगार रिपोर्ट में बताया है कि वैश्वीकरण ने आर्थिक अवसरों का सृजन तो किया है लेकिन विकासशील देशों द्वारा रोजगार के अवसरों का सृजन करने की क्षमता में बढ़ोतरी न कर पाने के कारण वे बेरोजगारी की चिंताजनक स्थिति में पहुंच गए हैं। आंकड़े भी इस बात की पुष्टि करते हैं। संगठित क्षेत्र में वर्ष 1991 से 1998 के बीच केवल 15.9 लाख रोजगार बढ़े हैं। जबकि इव अवधि में आबादी में 12 करोड़ एवं श्रम शक्ति में 5.2 करोड़ की वृद्धि हुई है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार भी पंजीकृत बेरोजगारों की संख्या वर्ष 1997–98 के दौरान 3.56 प्रतिशत और 1998–99 के दौरान 3.13 प्रतिशत बढ़ी, जबकि उदारीकरण के इस दशक में बेरोजगारी की औसत दर 2.5 प्रतिशत रिकार्ड की गई जो विगत दशकों की तुलना में सर्वाधिक ऊंची है।[1]

यही नहीं, उदारीकरण के परिणामस्वरूप देश में श्रम की राजनीतिक और संगठन शक्ति कमजोर हुई है। न सिर्फ संगठित क्षेत्र में कार्यरत श्रमिकों का प्रतिशत गिरा है बल्कि संगठित उद्योगों के शुद्ध उत्पादन में श्रमिकों का प्रदत्त हिस्सा भी 38.2 प्रतिशत से गिरकर 29.6 प्रतिशत ही रह गया है। उदारीकरण के इन वर्षों में हिन्दुस्तान एंटीबायोटिक्स, निकोलसफाइजर, बिन्नी, टीवीएस सुजुकी, यूनीवर्सल लगेज, प्रीमियर आटोमोबाइल्स, डनलप इंडिया, फिलिप्स इंडिया एवं सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों इत्यादि जैसी विशाल और प्रतिष्ठित कम्पनियों के द्वारा अपने श्रमिकों की छंटनी तथा बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा श्रमिकों की वाजिब मांगें पूरी करने के बदले उत्पादन अन्यत्र स्थानांतरित करने की धमकियों से देश में श्रम की राजनैतिक शक्ति गिरी है। अब कम्पनियों में अपना उत्पादन नाममात्र की मजदूरी प्रदान कर दिहाड़ी या ठेके के श्रमिकों द्वारा करवाने का प्रचलन बढ़ रहा है। तथाकथित उन्नत प्रौद्योगिकी के कारण भी देश में श्रम की मांग में कमी आई है। कुल मिलाकर उदारीकरण और निजीकरण की वर्तमान नीति ने देश के श्रमिकों को रोजगार के स्थान पर बेरोजगारी और निम्न स्तरीय मजदूरी की सौगात दी है, जो राष्ट्र के व्यापक हितों में नहीं कही जा सकती।

सरकार का कहना है कि वर्ष 1992–93 में देश में 36 प्रतिशत लोग गरीब थे और फरवरी 2001 में गरीबों की संख्या 26.1 प्रतिशत ही रह गई है। लेकिन राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन के इस आंकड़े को लेकर सवाल खड़े हो गए हैं क्योंकि यह स्तर केवल छह माह के आंकड़ों के आधार पर निकाला गया है। मामले की गंभीरता को देखते हुए योजना आयोग ने इसकी समीक्षा के लिए एक कार्यदल गठित किया है, जिसकी रिपोर्ट आने पर ही इन आंकड़ों की सत्यता का पता चल सकेगा। किन्तु वर्तमान में उपलब्ध प्रमाण बताते हैं कि वर्ष 1989–90 से 1992–93 के बीच गरीबी रेखा (न्यूनतम पोषण के लिए प्रतिदिन उपलब्ध कैलोरी के संदर्भ में परिभाषित) से नीचे जीवन–यापन करने वालों की संख्या 28 करोड़ 20 लाख से बढ़कर 35 करोड़ 50 लाख पर पहुंच गई है।[2] यह प्रवृत्ति पहले के विपरीत है क्योंकि वर्ष 1973–74 के 32.16 करोड़ की तुलना में वर्ष 1987–88 में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाली जनसंख्या घटकर 31.27 करोड़ रह गई थी, जिसे तालिका–2 में देखा जा सकता है।

उदारीकरण के इस दशक में गरीबी बढ़ने के मुख्य कारण मुख्यतः खाद्य पदार्थों के मूल्यों में हुई तेज वृद्धि, गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम के बजटीय समर्थन में कमी एवं जनसंख्या वृद्धि रहे हैं। मूल्य वृद्धि के चलते सबसे ज्यादा लोग गरीबी रेखा से नीचे आते हैं। विशेषकर जीवनोपयोगी वस्तुओं की कीमतें बढ़ने से गरीबों की संख्या तेजी से बढ़ती है। जब ऐसी स्थिति हो कि मूल्य वृद्धि को नियंत्रित नहीं किया जा सकता हो, तब सरकार को खुद सार्वजनिक खर्च बढ़ाकर गरीबों के खपत स्तर को सुरक्षा देनी चाहिए। हालांकि सरकार का कहना है कि केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारें प्रतिवर्ष गरीबी उन्मूलन पर लगभग 35,000 करोड़ रुपये खर्च कर रही हैं लेकिन लगता है कि यह पूरी धनराशि गरीबों तक नहीं पहुंच पा रही। जनसंख्या में हो रही

तालिका–2
भारत में गरीबी रेखा से नीचे जीवन–यापन करने वाली जनसंख्या (करोड़ में)

वर्ष	ग्रामीण	नगरीय	कुल
1973–74	26.13	6.03	32.16
1977–78	26.43	6.77	33.20
1983–84	25.17	7.53	32.70
1987–88	22.94	8.33	31.27

स्रोत : जनसंख्या तथा निर्धनसंख्या अनुमान विशेषज्ञ दल की रिपोर्ट, 1993

निरंतर वृद्धि ने भी गरीबों की संख्या में खासी वृद्धि की है। भारत की जनसंख्या सन् 1997 में 95.1 करोड़ थी, जो बढ़कर सन् 2002 में 102.9 करोड़ हो जाएगी। इस प्रकार इन पांच वर्षों में जनसंख्या में 7.8 करोड़ की वृद्धि होगी जबकि इसी अवधि में श्रमशक्ति में 5.2 करोड़ की वृद्धि होगी। इसी प्रकार नौवीं योजना के पुर्वानुमान के अनुसार 2002–07 की अवधि में श्रमशक्ति में 5.8 करोड़ की वृद्धि होने की आशा है। जाहिर है कि तेज गति से बढ़ती हुई श्रम शक्ति के लिए 1997–2002 की अवधि में 5.2 करोड़, 2002–07 के दौरान 5.8 करोड़ और 2002–12 के दौरान 5.5 करोड़ रोजगार के अवसर सृजित करने होंगे।[3] पिछले दस वर्षों की अवधि को देखते हुए यह कठिन कार्य होगा।

इस प्रकार नब्बे के दशक के अनुभव के दो संकेत हैं। पहला, वर्ष 1991 से प्रारम्भ उदारीकरण की नीति बेरोजगारी और गरीबी मिटाने में असफल रही है और इस अवधि में जो भी आर्थिक विकास हुआ, वह उन लोगों के खाते में गया जो सबल थे। सूचना क्रांति के इस युग में 'डिजीटल डिवाइड' का खतरा पैदा हो गया है। सूचना प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल करने वालों और इससे वंचित रहने वालों के बीच आय की असमानता का अंतर बढ़ा है। दूसरे, पिछले एक दशक में यदि गरीबी निवारक एवं रोजगार प्रेरित विकास नीति अपनाई जाती तो देश का स्वावलंबन बढ़ता और कमजोर वर्गों को राष्ट्र की मुख्यधारा में लाकर राष्ट्रीयता को मजबूत किया जाता तथा विदेशी कर्ज के बोझ और बहुराष्ट्रीय कंपनियों की घुसपैठ को भी रोका जा सकता था। अतः देश ने एक सुअवसर खोया है।

निष्कर्ष

यद्यपि उदारीकरण एवं निजीकरण की वर्तमान प्रक्रिया से उच्च विकास दर का लक्ष्य तो हासिल हुआ है किन्तु इससे न तो रोजगार की संभावनाएं उस अनुपात में बढ़ी हैं और न ही गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों का पर्याप्त लाभ जरूरतमंदों तक पहुंच सका है। ऐसे में यह सवाल प्रासंगिक है कि क्या भारत की अर्थव्यवस्था का संचालन मूलतः निजी लाभ के लिए किया जाना औचित्यपूर्ण होगा? जब पचास वर्षों से जारी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम इस समस्या को न सुलझा सके तो क्या अब निजी उद्योग और व्यवसाय इससे निजात दिलाने में सफल होंगे? नहीं, कदापि नहीं। इसके लिए अर्थव्यवस्था में राजकीय दखल तथा सामुदायिक नेतृत्व और भागीदारी आवश्यक होगी।

उदारीकरण एवं निजीकरण की वर्तमान प्रक्रिया से उच्च विकास दर का लक्ष्य तो हासिल हुआ है किन्तु इससे न तो रोजगार की संभावनाएं उस अनुपात में बढ़ी हैं और न ही गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों का पर्याप्त लाभ जरूरतमंदों तक पहुंच सका है। ऐसे में यह सवाल प्रासंगिक है कि क्या भारत की अर्थव्यवस्था का संचालन मूलतः निजी लाभ के लिए किया जाना औचित्यपूर्ण होगा? जब पचास वर्षों से जारी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम इस समस्या को न सुलझा सके तो क्या अब निजी उद्योग और व्यवसाय इससे निजात दिलाने में सफल होंगे?

सरकार को जहां एक ओर जवाहर ग्राम समृद्धि योजना तथा प्रधानमंत्री राष्ट्रीय राजमार्ग योजना के माध्यम से गरीबों को पर्याप्त रोजगार उपलब्ध कराना होगा, वहीं दूसरी ओर मूल्य वृद्धि से वास्तविक आय में कमी के दुष्प्रभाव से गरीबों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली को दुरुस्त करना होगा। इस संदर्भ में काम के बदले अनाज कार्यक्रम को सघन ढंग से संचालित करना एक उचित पहल हो सकती है।

इसके साथ ही प्रशासनिक मशीनरी को चुस्त–दुरुस्त करना होगा ताकि सरकारी तंत्र कुशलतापूर्वक करोड़ों गरीबों के उत्थान का लक्ष्य अर्जित कर सके। इस कार्य में देश के सरकारी तंत्र को निजी व स्वयंसेवी संस्थाओं के साथ कंधे से कंधा मिलाकर प्रयास करना होगा तथा कृषि, लघु उद्योग और सेवा क्षेत्र पर विशेष ध्यान देना होगा।

आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया औद्योगिक क्षेत्र और शहरी भारत में रोजगार वृद्धि को सीधे प्रभावित करने वाली है। इसका असर तभी सकारात्मक होगा, यदि भारत से श्रम आधारित उत्पादों (इसमें भारत तुलनात्मक दृष्टि से सस्ता और बेहतर उत्पादन करने की स्थिति में है भी) का निर्यात बढ़े। लेकिन इसका असर नकारात्मक तब होगा जब आयात में उदारीकरण के चलते घरेलू मांग देसी उत्पादों से हटकर विदेशी उत्पादों की ओर आकर्षित हो जाए।

इससे छोटे स्तर पर या तो सक्षमता आएगी या खराब माल का उत्पादन करने वाली इकाइयां बंद हो जाएंगी। इसकी दूरगामी प्रतिक्रिया यह होगी कि इसका वृहत् स्तर के उत्पादन पर भी बुरा असर पड़ेगा और इसलिए रोजगार में कमी आएगी। रोजगार में कमी के परिणामस्वरूप क्रय–शक्ति घटेगी और फिर अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में उत्पादन और रोजगार घटने का दुश्चक्र चलने लगेगा। अतः विकास की वर्तमान व्यवस्था में रोजगार उद्देश्य एवं गरीबी उन्मूलन पर बल देने की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि विकास प्रक्रिया को त्वरित करने की। इसका कोई और विकल्प भी नहीं है। ❑

संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दुस्तान, दि हिन्दुस्तान टाइम्स लिमिटेड, नई दिल्ली, 5 सितंबर, 1999, पृ.सं. 7 एवं 5 जुलाई, 2001 पृ. 6
2. भादुड़ी अमित एवं नैयर दीपक, 'उदारीकरण का सच', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996, पृ. 86.
3. योजना आयोग, नौंवी पंचवर्षीय योजना, 1997–2002 (फरवरी, 1999)

प्रभारी विभागाध्यक्ष (एम.ओ.एम.)
स.रा.शा. महिला पॉलीटेक्निक, सागर (म.प्र.)

मध्य प्रदेश में पंचायतों की कार्यप्रणाली

देवास जिले की ग्राम पंचायतों के संदर्भ में एक अध्ययन

डा. आशीष भट्ट*

तिहत्तरवें संविधान संशोधन अधिनियम ने स्वतंत्र भारत में पंचायती राज व्यवस्था को न सिर्फ वैधानिक स्तर प्रदान किया वरन् स्थायित्व भी प्रदान किया। 73वें संविधान संशोधन के अनुरूप मध्यप्रदेश ने पंचायत राज अधिनियम, 1993 बनाया। मई–जून 1994 में प्रदेश में प्रथम पंचायत राज संस्थाओं का गठन हुआ।

प्रदेश में त्रि–स्तरीय पंचायत राज व्यवस्था के अंतर्गत पहले निर्वाचन के समय 45 जिला पंचायतें, 459 जनपद पंचायतें और 30,922 ग्राम पंचायतें थीं। प्रदेश में पंचायत राज संस्थाओं को स्वतंत्र कार्य निर्वहन की इकाइयां बनाने के उद्देश्य से इन संस्थाओं को समग्र ग्रामीण विकास हेतु योजना निर्माण से लेकर क्रियान्वयन तक के दायित्व सौंपे गए हैं। संविधान की 11वीं अनुसूची के अनुरूप राज्य के विधान में अनुसूची 4 के माध्यम से सामाजिक न्याय और आर्थिक विकास से संबंधित 29 विषय योजना निर्माण और क्रियान्वयन के लिए पंचायतों को सुपुर्द किए गए हैं। इसी के आधार पर प्रदेश में ग्रामीण विकास से संबंधित सभी विभागों के महत्वपूर्ण अधिकारों को पंचायतों को हस्तांतरित किया गया है।

मध्य प्रदेश पंचायत राज अधिनियम, 1993 के तहत गठित पंचायत राज संस्थाएं पांच वर्षों का अपना पहला कार्यकाल वर्ष 2000 में पूरा कर चुकी हैं। अतः यह प्रासंगिक है कि समग्र ग्रामीण विकास के संदर्भ में इन संस्थाओं की भूमिका एवं कार्य प्रणाली का अध्ययन किया जाए। चूंकि त्रि–स्तरीय पंचायत राज व्यवस्था में ग्राम पंचायतें सबसे छोटी किन्तु आधारभूत इकाई हैं इसलिए वर्तमान संरचना में पंचायत राज के क्रियान्वयन तथा समग्र ग्रामीण विकास की जिम्मेदारी इसी की है। इस अध्ययन को ग्राम पंचायतों तक ही सीमित रखा गया है। अध्ययन हेतु प्रदेश के देवास जिले की आठ ग्राम पंचायतों का चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन प्रविधि से इस प्रकार किया गया जिससे सभी वर्ग (सामान्य, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पिछड़ा वर्ग) की पंचायतों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो सके। प्रत्येक वर्ग की दो ग्राम पंचायतों का चयन किया गया जिनमें से एक का चयन उस वर्ग की महिलाओं के लिए आरक्षित पंचायतों में से किया गया। चयनित ग्राम पंचायतों के पंचायत राज प्रतिनिधियों और ग्रामवासियों से अनौपचारिक साक्षात्कार, विचार–विमर्श, समूह चर्चा एवं ग्राम पंचायतों के अभिलेखों आदि के माध्यम से तथ्यों का संकलन किया गया। अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों का बिन्दुवार विवेचन अग्रानुसार है :

ग्रामसभा

सभी ग्राम पंचायतों में ग्रामसभा की बैठकों का आयोजन तो नियमित हुआ है किन्तु जनसहभागिता, जिस पर ग्रामसभा की संकल्पना टिकी हुई है, उसका सर्वथा एवं सर्वत्र अभाव रहा है। यह तथ्य स्पष्ट रूप से सामने आया कि लगभग सभी ग्राम पंचायतों में जहां गांव में सम्पन्न वर्ग के लोगों का बाहुल्य है वहां लोगों की राजनीति एवं ग्रामीण विकास के प्रति उदासीनता ग्रामसभा की बैठकों में कम उपस्थिति के कारण हैं। एक या दो स्थानों पर दलीय प्रतिद्वंद्विता के कारण भी ग्रामसभा की बैठकों में उपस्थिति प्रभावित रही है। अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति बहुल ग्राम पंचायतों में लोगों की मजदूरी और आजीविका संबंधी व्यस्तता के कारण कोरम का अभाव रहता है। साथ ही, अशिक्षा एवं अज्ञानता के कारण इन वर्गों को ग्रामसभा के महत्व एवं उपयोगिता की जानकारी ही नहीं है। इन वर्गों के अधिकांश लोगों की सोच यही है कि ग्रामसभा में केवल शासकीय योजनाओं से लाभ लेने के लिए ही जाते हैं।

ग्रामसभा की बैठकों में सदस्यों की सहभागिता के संदर्भ में देखा जाए तो बैठकों में उपस्थिति अवश्य कम रही है लेकिन आरंभिक दिनों के मुकाबले बैठकों में सदस्यों की सक्रियता में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। ग्राम सभा से संबंधित विभिन्न मुद्दों एवं समस्याओं पर पर्याप्त विचार–विमर्श और वाद–विवाद होता है, किंतु अंतिम निर्णय के संदर्भ में देखा जाए तो इन पंचायतों की ग्रामसभा में लिए जाने वाले निर्णयों पर प्रभावशाली व्यक्तियों या सरपंचों का प्रभाव रहता है।

ग्राम पंचायत की बैठक

ग्राम पंचायत की मासिक बैठक में सदस्यों की उपस्थिति लगभग सभी पंचायतों में संतोषजनक रही है। प्रारम्भ में अवश्य महिला सदस्यों के स्थान पर उनके पति या रिश्तेदार बैठक में उपस्थित होते थे अथवा बैठक में महिला प्रतिनिधियों के साथ होते थे किन्तु धीरे–धीरे विरोध के कारण यह स्थिति समाप्त होती गई एवं महिला प्रतिनिधि स्वयं बैठक में उपस्थित रहने लगीं।

सहभागिता के संदर्भ में देखा जाए तो ग्राम पंचायत की बैठकों में पुरुष प्रतिनिधियों

* संकाय सदस्य, मध्यप्रदेश सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, उज्जैन, (म.प्र)।

की तो सक्रिय सहभागिता रही किन्तु महिला प्रतिनिधियों की सक्रिय सहभागिता नहीं रह पाई है, उनकी भूमिका बैठकों में औपचारिकताओं के निर्वहन तक ही सीमित रहती है।

ग्राम पंचायत की बैठकों में निर्णय प्रक्रिया के संदर्भ में यह स्पष्ट रूप से सामने आया कि छोटी ग्राम पंचायतों में जहां निर्णयों पर सरपंच या अन्य प्रभावशाली सदस्यों के प्रभावसहित सर्वसम्मति रही वहीं बड़ी ग्राम पंचायतों में अधिकांश अवसरों पर निर्णयों का आधार बहुमत रहता है किन्तु इन पंचायतों में गुटबाजी और दलीय प्रतिद्वंद्विता के कारण सदस्यों द्वारा गांव से संबंधित महत्वपूर्ण निर्णयों पर भी अनावश्यक विरोध कर बाधाएं खड़ी की गईं।

विभिन्न योजनाओं के लिए हितग्राहियों का चयन

ग्रामसभा के माध्यम से विभिन्न शासकीय योजनाओं हेतु हितग्राहियों का चयन ग्राम पंचायतों का एक महत्वपूर्ण कार्य है। एक या दो पंचायतों को छोड़कर लगभग सभी पंचायतों में चयन की प्रक्रिया को लेकर पारदर्शिता का अभाव रहा है। ग्रामीणजनों ने भी सर्वाधिक विरोध इसी मुद्दे को लेकर प्रकट किया है। साथ ही कुछ पंचायतों में पैसे लेकर सरपंच या पंचायत सचिव द्वारा हितग्राही का चयन करने के आरोप भी लगाए गए हैं।

हितग्राहियों के चयन के संदर्भ में एक बात उल्लेखनीय है कि ग्राम स्तर पर शासकीय योजनाओं से लाभ पाने वाले उम्मीदवारों की संख्या बहुत अधिक रहती है जबकि योजनाओं के लिए लक्ष्य बहुत ही कम रहता है। इसलिए गांव के गरीब तथा कमजोर वर्ग के सभी लोगों के बीच प्राथमिकता का निर्धारण करना एक कठिन कार्य हो जाता है। जिन लोगों को लाभ नहीं मिल पाता, उन लोगों में आक्रोश स्वाभाविक है।

स्थानीय नियोजन

सम्पूर्ण ग्रामीण विकास के संदर्भ में स्थानीय नियोजन की अवधारणा महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसके तहत गांव के विकास के लिए स्थानीय आवश्यकतानुसार योजना बनाकर उसके अनुरूप कार्य करवाए जा सकते हैं।

अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि किसी भी ग्राम पंचायत में स्थानीय नियोजन जैसी किसी प्रक्रिया का निर्वहन नहीं हुआ है। पर्याप्त जनसहभागिता, जानकारी तथा तकनीकी ज्ञान का अभाव इसके प्रमुख कारण हैं।

ग्राम पंचायतों द्वारा किए गए कार्य

पंचायत द्वारा किए गए कार्यों के संदर्भ में देखा जाए तो सभी ग्राम पंचायतों द्वारा अपने कार्यकाल के दौरान अनेक कार्य करवाए गए हैं। ये समस्त कार्य नवीन पंचायत राज व्यवस्था के अस्तित्व में आने के पूर्व किए गए कार्यों की तुलना में कहीं अधिक हैं। इन कार्यों में प्रमुख रूप से पेयजल व्यवस्था, सड़क एवं खड़ंजा निर्माण, भवनों का निर्माण/रख–रखाव तथा मरम्मत, पुलिया निर्माण आदि प्रमुख हैं।

ग्रामसभा की बैठकों में सदस्यों की सहभागिता के संदर्भ में देखा जाए तो बैठकों में उपस्थिति अवश्य कम रही है लेकिन आरंभिक दिनों के मुकाबले बैठकों में सदस्यों की सक्रियता में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। ग्रामसभा से संबंधित विभिन्न मुद्दों और समस्याओं पर पर्याप्त विचार–विमर्श तथा वाद–विवाद हुआ है, किंतु अंतिम निर्णय के संदर्भ में देखा जाए तो इन पंचायतों की ग्रामसभा में लिए जाने वाले निर्णयों पर प्रभावशाली व्यक्तियों या सरपंचों का प्रभाव रहा है।

पंचायतों द्वारा किए गए कार्यों के संदर्भ में एक या दो पंचायतों को छोड़कर लगभग सभी पंचायतों में ग्रामवासियों की यह शिकायत थी कि करवाए गए कार्य गांव की आवश्यकतानुसार तो हैं लेकिन प्राथमिकता के आधार पर नहीं हैं। इसके पीछे प्रमुख कारण ग्राम स्तर पर स्थानीय नियोजन जैसी किसी प्रक्रिया का न होना है। इसके अतिरिक्त कार्यों की स्वीकृति तथा वित्तीय व्यवस्थाओं में अभी भी शासकीय अधिकारियों का हस्तक्षेप होने के कारण कार्यों की स्वीकृति का आधार गांव की आवश्यकता न होकर केवल शासकीय लक्ष्यपूर्ति करना है।

यद्यपि सभी ग्राम पंचायतों में अनेक कार्य हुए हैं किंतु इन कार्यों की संख्या एवं लागत के आधार पर देखा जाए तो गांव पंचायतवार इनमें असमानता दिखाई देती है। कुछ ग्राम पंचायतों में चाहे वे छोटी पंचायतें ही क्यों न हों बहुत अधिक कार्य हुए हैं जबकि बाकी ग्राम पंचायतों में बहुत ही कम कार्य हुए हैं। जिन गांवों में अधिक कार्य हुए उनमें सरपंच की सक्रियता तो प्रमुख है ही, राजनीतिक पहुंच, उच्च स्तरीय नेतृत्व और अधिकारियों से संबंध तथा परंपरागत राजनीतिक पृष्ठभूमि आदि की भी प्रमुख भूमिका रही है।

ऐसी ग्राम पंचायतें जिनमें दो या दो से अधिक गांव सम्मिलित हैं, उन सभी पंचायतों में किए गए कार्यों में ग्राम स्तर पर असमानता दिखाई देती है। जहां ग्राम पंचायत का मुख्यालय है उसमें या सरपंच जिस गांव का निवासी है उस गांव में पंचायत के अन्य गांवों की अपेक्षा अधिक कार्य हुए हैं।

समग्र ग्रामीण विकास

ग्राम पंचायतों को समग्र ग्रामीण विकास की दिशा में कार्य करने के लिए विभिन्न शक्तियां एवं अधिकार दिए गए हैं। इनके माध्यम से पंचायतों से यह अपेक्षा की गई है कि वे समग्र ग्रामीण विकास के संदर्भ में शासकीय योजनाओं एवं कार्यों के क्रियान्वयन के अतिरिक्त गांव में ग्रामीण विकास के प्रत्येक क्षेत्र, चाहे वह शिक्षा का क्षेत्र हो या स्वास्थ्य का अथवा गांव के विकास से संबंधित अन्य कोई क्षेत्र, सभी में स्थानीय सहभागिता के माध्यम से कार्य करेंगी। इसके अतिरिक्त गांव

में विभिन्न क्षेत्रों में जागरूकता संबंधी कार्य, साम्प्रदायिक सौहार्द, मेलों, उत्सवों का आयोजन आदि भी करेंगी।

अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि एक ग्राम पंचायत को छोड़कर किसी भी पंचायत ने इस दिशा में कोई कार्य नहीं किया है। सरपंचों एवं पंचों की सूची केवल शासकीय अनुदान के द्वारा विभिन्न निर्माण कार्यों को करवाने तक ही सीमित दिखाई देती है। कुछ पंचायतों में शासकीय निर्देशों के फलस्वरूप शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में कुछ जागरूकता अभियान चलाए गए हैं। पंचायतों ने स्वयं अपने स्तर पर इस प्रकार के आयोजनों में रुचि नहीं ली।

> **अधिकांश ग्राम पंचायतों में अभिलेखों के रख–रखाव की स्थिति को अच्छा नहीं कहा जा सकता। एक या दो बड़ी ग्राम पंचायतों को छोड़कर किसी भी ग्राम पंचायत में जो आवश्यक अभिलेख पंचायतों में होने चाहिए, वे भी पूरी तरह से उपलब्ध नही थे। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित पंचायतों में तो किसी भी प्रकार के अभिलेख उपलब्ध नहीं थे।**

अभिलेखों का रख–रखाव

अधिकांश ग्राम पंचायतों में अभिलेखों के रख–रखाव की स्थिति को अच्छा नहीं कहा जा सकता है। एक या दो बड़ी ग्राम पंचायतों को छोड़कर किसी भी ग्राम पंचायत में जो आवश्यक अभिलेख पंचायतों में होने चाहिए वे भी पूर्ण रूप से उपलब्ध नहीं थे। साथ ही अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित पंचायतों में तो किसी भी प्रकार के अभिलेख उपलब्ध नहीं थे। इन पंचायतों के प्रतिनिधियों का कहना था कि नवीन पंचायत राज व्यवस्था के तहत जब हमने पंचायत में कार्यभार ग्रहण किया तब पंचायतों में किसी भी प्रकार के रिकार्ड उपलब्ध नहीं थे। ये रिकार्ड कहां हैं इसके बारे में हमें जानकारी नहीं मिली।

रिकार्डों के रख–रखाव की इस स्थिति के पीछे एक प्रमुख कारण अप्रशिक्षित एवं अनुभवहीन पंचायतकर्मियों का होना है जो ग्राम पंचायत में सचिव के दायित्व का निर्वहन करते हैं। एक ग्राम पंचायत में 40 से भी अधिक रिकार्ड एवं अभिलेख रखने होते हैं। इनमें रोकड़ बही, रसीद बुक, रसीद पुस्तक का मूल, बिल पंजी, वेतन बिल, नगद जमा पंजी तथा अन्य कई प्रकार के दस्तावेज सम्मिलित हैं जिनके रख–रखाव की एक अनुभवहीन एवं अप्रशिक्षित व्यक्ति से अपेक्षा नहीं की जा सकती है।

वित्तीय स्थिति

वित्तीय स्थिति के संदर्भ में सामान्य तौर पर ग्राम पंचायतों की स्थिति अच्छी नहीं कही जा सकती है। बड़ी पंचायतों को छोड़कर किसी भी ग्राम पंचायत में शासकीय अनुदान के अतिरिक्त आय का अन्य कोई स्रोत नहीं है। बड़ी पंचायतों को जल कर, प्रकाश कर, बाजार फीस, भवन कर, सम्पत्ति कर आदि के रूप में अतिरिक्त आय हो जाती है। जबकि छोटी पंचायतों ने किसी भी प्रकार के करारोपण का प्रयास नहीं किया। इसके अतिरिक्त इन पंचायतों में ऐसी सुविधाओं का भी अभाव है जिन पर कि करारोपण किया जा सके। करारोपण के संदर्भ में उस पंचायत का कार्य अनुकरणीय कहा जा सकता है, जहां पर ग्राम पंचायत द्वारा गांव में विभिन्न सार्वजनिक सुविधाएं उपलब्ध करवाने के पूर्व ग्रामसभा के माध्यम से इन सुविधाओं के लिए आवश्यक करारोपण तथा उस कर को अदा करने की स्वीकृति ग्रामवासियों से प्राप्त कर ली गई है। इस वजह से पंचायत द्वारा उपलब्ध कराई गई सुविधाओं पर इनके सम्पोषण एवं विकास के लिए कर वसूलना संभव हो सका है।

इन ग्राम पंचायतों के अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि मध्यप्रदेश पंचायत राज अधिनियम, 1993 के तहत पंचायत राज संस्थाओं की स्थापना एवं गठन 73वें संविधान संशोधन के प्रावधानों के अनुरूप ही किया गया है। इन ग्राम पंचायतों में ग्रामसभा तथा ग्राम पंचायत की बैठकों का आयोजन नियमित रहा है किन्तु पर्याप्त स्थानीय सहभागिता का अभाव रहा है। आरक्षण के माध्यम से जहां समाज के कमजोर वर्गों को प्रतिनिधित्व का अवसर नहीं मिला उन पंचायतों के प्रदर्शन को संतोषजनक नहीं कहा जा सकता है। फिर भी आरक्षण के माध्यम से प्राप्त अवसरों के कारण इन वर्गों में भी स्व विकास की दिशा में बढ़ने की ओर थोड़ी प्रगति हुई है। पंचायतों के निर्णयों और कार्यों पर यद्यपि प्रभावशाली व्यक्तियों और सरपंचों का प्रभाव रहता है फिर भी धीरे–धीरे ही सही गांव से संबंधित कार्यों और निर्णयों में स्थानीय स्तर पर सक्रिय सहभागिता की ठोस संभावना दिखाई देती है।

पंचायतों की कार्यप्रणाली के मूल्यांकन से स्पष्ट है कि पंचायतों को स्थानीय स्तर पर समग्र ग्रामीण विकास की दिशा में कार्य करने वाली संस्था के रूप में स्थापित किया गया था किन्तु वे मात्र शासकीय कार्यक्रमों एवं निर्णयों के क्रियान्वयन की एजेंसी बनकर रह गई हैं। फिर भी यह तथ्य संतोषजनक है कि इस व्यवस्था के अस्तित्व में आने के पश्चात् ग्राम स्तर पर अनेक कार्य हुए हैं जिस कारण लोगों की समस्याओं का समाधान हुआ है एवं उन्हें विभिन्न प्रकार की सुविधाएं भी उपलब्ध हुई हैं।

अंततः इस अध्ययन के अनुभव के आधार पर कहा जा सकता है कि पंचायत राज संस्थाओं ने ग्रामीण विकास से अनेक कार्यों का सम्पादन किया है। कार्यों के प्रभावी क्रियान्वयन के मार्ग में कई स्तरों पर बाधाएं हैं जो समय के साथ–साथ दूर होती चली जाएंगी। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की इस अबाध प्रक्रिया के पहले कार्यकाल का अनुभव इस बात का संकेत देता है कि आने वाले समय में पंचायतें ज्यादा परिपक्व और प्रभावशाली भूमिका निभाएंगी जिससे सामाजिक न्याय तथा आर्थिक विकास संबंधी बहुप्रतीक्षित उद्देश्यों को प्राप्त करना संभव हो सकेगा। ❑

पोषक तत्वों से भरपूर मूंगफली

डा. नलिन चन्द्र त्रिपाठी

हमारे आहार में पोषक तत्वों का महत्वपूर्ण स्थान है जिसमें प्रोटीन और ऊर्जा प्रमुख हैं। यह मुख्य रूप से शारीरिक कार्य में सहायक होते हैं, जिसमें कोशिकाएं प्रोटीन के विभाजित एमिनो एसिड का एक भाग है जो एक ग्राम प्रोटीन उपयोग करने से 4.2 किलो कैलोरी ऊर्जा प्रदान करती है। वैज्ञानिकों द्वारा की गई अनुसंधान की रासायनिक तुलना से यह ज्ञात होता है कि मूंगफली का उपयोग करने से संतुलित आहार में पोषक तत्वों की कमी (प्रोटीन और ऊर्जा) को पूरा किया जा सकता है। आम लोगों की धारणा यह है कि सूखे मेवों जैसे–काजू, बादाम, अखरोट, चिरौंजी, किशमिश और पिस्ता में पोषक तत्वों की मात्रा बहुत अधिक पाई जाती है। भारतीय खाद्य पदार्थ पोषक मूल्य, हैदराबाद के द्वारा रासानिक तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि जो पोषक तत्व मूंगफली में उपलब्ध हैं वे अन्य मेवों की तुलना में लगभग बराबर हैं जबकि मूंगफली में प्रोटीन की मात्रा सर्वाधिक है और यह कम कीमत पर प्रत्येक जगह आसानी से प्राप्त की जा सकती है। रासायनिक तुलना के अनुसार भारतीय खाद्य पदार्थ एवं पोषक मूल्य, हैदराबाद द्वारा यह सिफारिश की गई है कि अधिक परिश्रम करने वाले पुरुष, स्त्री और किशोरों (16–18) के लिए प्रतिदिन मूंगफली क्रमशः 50, 40 और 50 ग्राम प्रतिदिन जरूरी है।

मूंगफली एक वर्षीय दलहनी पौधा है जिसका वानस्पतिक नाम ऐराकिस हाइपोजिया है इसका वर्गीकरण पैपिलियो–नेसी उप कुल के अंतर्गत किया जाता है। सामान्य रूप से मूंगफली की किस्मों को वृद्धि के आधार पर दो वर्गों में बांटा गया है : (1) सीधी, गुच्छों में बढ़ने वाली किस्में, (2) भूमि पर सामांतर फैलने वाली किस्में। मूंगफली की खेती विश्व के विभिन्न महाद्वीपों में मुख्य रूप से दक्षिण अमरीका, अफ्रीका, यूरोप, एशिया और आस्ट्रेलिया में, की जाती है। एशिया में चीन और भारत का उत्पादन सर्वाधिक क्रमशः 18316 और 7810 हजार मिलियन टन है और उत्पादकता की दृष्टि से सर्वाधिक संयुक्त राज्य अमरीका में (उत्तरी/दक्षिणी) 4168 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर है। जबकि एशिया में प्रति हेक्टेयर उत्पादन 1411 किलोग्राम है। भारत में मूंगफली का कुल कृषि क्षेत्रफल 7.57 मिलियन हेक्टेयर तथा उत्पादन 7.16 मिलियन टन है और उत्पादकता 1210 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर है (1998–99) जबकि चीन की उत्पादकता 1412 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर है।

हमारे देश की जनसंख्या 100 करोड़ से ऊपर पहुंच चुकी है। इसमें लगभग 80 प्रतिशत लोग खेती पर आधारित हैं जबकि 75 प्रतिशत जनसंख्या निम्नवर्ग, मध्य वर्ग तथा गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोगों की है। इन लोगों को उचित मात्रा में पोषक तत्व उपलब्ध नहीं हो पाता है जिससे वे कुपोषण का शिकार हो जाते हैं और कई प्रकार की बीमारियों से पीड़ित होते हैं। इसका मुख्य कारण पोषक तत्वों की कमी और खाद्य पदार्थों में उपलब्ध पोषक तत्वों का दिन प्रतिदिन संतुलित आहार में कमी होना है। यदि सभी नागरिकों का आहार पोषण की दृष्टि से भी संतुलित हो तो इसे "खाद्य और पोषण सुरक्षा" का नाम दिया जा सकता है। खाद्य और पोषण सुरक्षा केवल कृषि उत्पादन बढ़ाने से हासिल नहीं की जा सकती। इसके साथ गरीबी, बेरोजगारी, जनसंख्या वृद्धि, निरक्षरता, अज्ञानता, प्राकृतिक आपदाएं, प्राचीन परंपराएं, लिंग भेद जैसे कई जटिल मुद्दे गहरे जुड़े हुए हैं।

तेजी से बढ़ती आबादी के लिए खाद्य सामग्री उपलब्ध कराने की होड़ में पोषण को लगभग उपेक्षित कर दिया गया। यह तथ्य

आजादी के बाद प्रोटीन के महत्वपूर्ण स्रोत दाल की उपलब्धता गिरने से प्रमाणित होता है। सन् 1951 में देश में दाल की प्रति व्यक्ति प्रतिदिन उपलब्धता 60.7 ग्राम थी जो आज घटकर 38.6 ग्राम रह गई है। देश में प्रोटीन–ऊर्जा कुपोषण व्यापकता के साथ मौजूद है, कुपोषण ने विशेषरूप से महिलाओं और बच्चों को अपना शिकार बनाया हुआ है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण द्वारा हाल में किए गए एक सर्वेक्षण से पता लगा है कि चार वर्ष से कम आयु के 53 प्रतिशत से अधिक बच्चे कुपोषित और कम वजन के हैं। दुनिया के 40 प्रतिशत कुपोषित बच्चे भारतीय हैं। देश की 85 प्रतिशत से अधिक गर्भवती महिलाएं खून की कमी से ग्रस्त हैं। प्रोटीन के अलावा विटामिन–ए और आयोडीन की कमी व्यापक रूप से देखी गई है। दिलचस्प तथ्य यह है कि कुपोषण के मूल में अकेले गरीबी नहीं है।

पुरुषों, स्त्रियों, एवं किशोरों (16–18 वर्ष) के लिए प्रतिदिन आवश्यक पोषक तत्व की मात्रा तालिका–1 में दर्शाई गई है।

तालिका–2 से स्पष्ट है कि अन्य खाद्य पदार्थों जैसे गेहूं, बाजरा, चावल, दाल, सब्जी, फल एवं दूध की तुलना में मूंगफली प्रोटीन एवं ऊर्जा (किलो कैलोरी) (28.5 और 595) सर्वाधिक है। शुष्क फलों की अपेक्षा प्रोटीन प्रतिशत मूंगफली में (28.5) सर्वाधिक है जबकि ऊर्जा (किलो किलोरी) पिस्ता, बादाम, काजू, के लगभग बराबर है केवल अखरोट और चिरौंजी में ऊर्जा (किलो कैलोरी) थोड़ी ज्यादा है।

मूंगफली के दानों में लगभग 48–50 प्रतिशत तक तेल पाया जाता है जिसका उपयोग खाद्य पदार्थों के रूप में किया जाता है। मूंगफली के तेल का उपयोग 'सलाद आयल', मार्जरीन तथा अन्य वानस्पतिक वसाओं के निर्माण में भी किया जाता है। इसके तेल में 82 प्रतिशत चिकनाई वाले औलिक अम्ल (40–50 प्रतिशत) और लिनोलिक अम्ल (25–30 प्रतिशत) पाया जाता है। इसके तेल में लगभग 18 प्रतिशत ठोस चिकनाई या

तालिका–1

पुरुषों, स्त्रियों एवं किशोरों (16–18 वर्ष) के लिए प्रतिदिन आवश्यक पोषक तत्व

वर्ग	ऊर्जा (किलो) कैलोरी प्रतिदिन	प्रोटीन ग्राम प्रतिदिन	वसा ग्राम प्रतिदिन	कैल्सियम मि.ग्रा. प्रतिदिन	आयरन मि.ग्रा. प्रतिदिन	विटामिन्स (मि.ग्रा.) ए1	ए2	बी1	बी2	बी5	बी12	सी
पुरुष	3800	60	20	400	28	600	2400	1.6	1.9	21	1.0	40
स्त्री	2925	50	20	400	30	600	2400	1.2	1.5	16	1.0	40
किशोर (16–18 वर्ष)	2640	78	22	500	50	600	2400	1.3	1.3	17	1.0	40

ए1=रेटिनाल, ए2=केरोटिन, बी1=थाइमिन, बी2=राईबोफ्लोविन, बी5=निकोटिनिक अम्ल, बी 12=बी काम्पलेक्स एवं सी=एस्कार्विक अम्ल।

तालिका–2

मूंगफली की अन्य खाद्य पदार्थों एंव सूखे मेवों से तुलना

खाद्य पदार्थ	प्रोटीन (प्रतिशत)	ऊर्जा (किलो कैलोरी)
गेहूं	11.8	346
बाजरा	11.6	361
चावल	7.5	346
दाल	25.0	340
सब्जी	18.0	355
फल	3.0	250
दूध	3.0	117
अखरोट	20.5	658
पिस्ता	19.3	594
चिरौंजी	19.0	656
बादाम	18.7	598
काजू	17.2	561
मूंगफली	28.5	595

तालिका–3

मूंगफली और सूखे मेवों के पोषक तत्वों की तुलना (प्रति 100 ग्राम)

खाद्य सामग्री	वसा (ग्राम)	खनिज पदार्थ (ग्राम)	रेशा (ग्राम)	कार्बोहाइड्रेट (मि.ग्रा.)	कैल्सियम (मि.ग्रा.)	फास्फोरस (मि.ग्रा.)	लोहा (मि.ग्रा.)	पोटैशियम	विटामिन (मि.ग्रा.) बी1	बी2	बी5
मूंगफली	47.5	2.9	2.8	13.3	90	385	3.0	615	0.99	0.11	5.0
बादाम	54.2	3.0	2.6	19.5	234	504	4.7	773	0.24	0.92	3.5
काजू	45.7	2.6	1.7	29.3	38	373	3.8	464	0.43	0.25	1.8
अखरोट	59.3	2.3	1.7	14.8	100	570	6.0	460	0.22	0.11	0.7
पिस्ता	53.6	2.7	1.9	19.0	131	500	7.3	972	0.67	0.28	1.4
चिरौंजी	59.1	3.0	3.8	12.1	279	528	8.5	436	0.69	0.53	1.5

बी1=थाइमिन, बी2=राईबोफ्लोविन, बी5=नियासिन

उच्च तापमान पर पिघलने वाले पामिटिक, स्टिऐरिक तथा ऐराकिडिक अम्ल भी उपस्थित रहते हैं। खाद्य तेल ऊर्जा का मुख्य स्रोत है जिसका शरीर की विभिन्न क्रियाओं में महत्वपूर्ण योगदान है। भारतीय खाद्य पदार्थ पोषक मूल्य, हैदराबाद के द्वारा सिफारिश की गई तेल की मात्रा 15–25 ग्राम प्रतिदिन आवश्यक है। आवश्यकता से अधिक प्रयोग करने से यह रक्त में कोलेस्ट्राल की मात्रा को बढ़ाता है जो स्वास्थ्य एवं हृदय रोग के लिए बहुत हानिकारक है। खाद्य तेलों में क्रमशः नारियल, मूंगफली, सफेद तिल, सरसों, कपास, काला तिल, सूरजमुखी, कुसुम और सोयाबीन के तेल का उपयोग किया जाता है जो खाद्य तेल के रूप में स्वीकृत तथा हृदयरोगियों के लिए लाभदायक है।

मूंगफली के विभिन्न उपयोग

- एक वर्षीय दलहनी पौधा होने के कारण यह अपनी जड़ों में पाई जाने वाली गांठों द्वारा वायुमंडल में उपलब्ध नाइट्रोजन को एकत्र करके भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाती है। इससे लगभग 180 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर नाइट्रोजन मिल जाता है जो अन्य दूसरी फसलों के लिए लाभदायक है।
- मूंगफली का तेल निकालते वक्त जो खली प्राप्त होती है वह दुधारू पशुओं के लिए पौष्टिक और उत्तम आहार है, साथ ही, यह एक बहुमूल्य खाद का भी काम करती है। इसकी खली में 7–8 प्रतिशत नाइट्रोजन, 1.5 फास्फोरस और 1.5 प्रतिशत पोटाश पाया जाता है। इसके पौधों को सुखाकर साइलेज के रूप में या हरा चारा के रूप में पशुओं को खिलाया जाता है। गांवों में इसका छिलका बहुतायत में ईंधन के रूप में प्रयोग किया जाता है।
- मूंगफली के दानों को कच्चा भूनकर, तलकर और नमक तथा अन्य मसाले मिलाकर अथवा उबालकर अन्य सब्जियों के साथ खाया जाता है। मूंगफली वानस्पतिक प्रोटीन का एक सस्ता एवं अच्छा स्रोत है। उच्च कोटि की प्रोटीन विद्यमान होने के कारण यह पाचन की दृष्टि से भी शीघ्र पचने वाली होती है। इसके कच्चे दानों से दूध, दही और मक्खन इत्यादि पोषक तत्वयुक्त उत्तम गुणों वाले खाद्य पदार्थ, ब्रेड, बिस्कुट, पापड़ी और केक तैयार किये जाते है। इससे बने खाद्य पदार्थ दूसरे देशों को निर्यातकर विदेशी मुद्रा भी अर्जित की जाती है।
- मूंगफली का तेल बहुत उपयोगी है इसमें असंतृप्त वसा अधिक पाया जाता है। इसके तेल में ओलिक–लिनोलिक अम्ल का अनुपात बहुत ही अच्छा होने के कारण इसका स्थायित्व बढ़ जाता है। खाद्य तेलों में संतृप्त और मोनो–असंतृप्त वसा अम्ल में अधिक पोषकता सूचकांक पाई जाती है।
- मूंगफली के तेल का उपयोग साबुन बनाने के किया जाता है। कुछ सीमा तक इसके तेल का उपयोग सौंदर्य प्रसाधनों, शेविंग क्रीमों, कोल्ड क्रीमों, आदि के निर्माण के लिए भी किया जाता है। यह पशुचिकित्सा एवं दवाओं के क्षेत्र में भी उपयोगी है।
- गरीबों की मेवा कही जाने वाली मूंगफली जाड़े में बहुतायत से खाई जाती है। संतुलित आहार में पोषक तत्वों की कमी का उन लोगों पर अधिक प्रभाव पड़ता है जो निर्धन वर्ग के हैं, क्योंकि वे महंगे मेवे और प्रोटीन युक्त खाद्य पदार्थों का सेवन नहीं कर पाते हैं, परिणामस्वरूप रोगग्रस्त हो जाते हैं। मूंगफली में प्रोटीन की मात्रा सर्वाधिक है जो उत्तम स्वास्थ्य के लिए बहुत ही लाभदायक है। यह कम समय तथा कम कीमत पर बाजार में आसानी से प्राप्त की जा सकती है। गांवों के निवासी यदि इसे अपने आहार में संतुलित मात्रा में प्रयोग में लाएं तो निश्चित ही उन्हें कुपोषण से मुक्ति मिल सकती है और विभिन्न प्रकार की बीमारियों से बचा जा सकता है। कुपोषण से निजात पाने के लिए ही भारतीय विज्ञान कांग्रेस–2001 का मुख्य विषय खाद्य, पोषण एवं पर्यावरण सुरक्षा रखा गया था, जिसमें हमारे प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों ने वर्ष 2020 तक भारत को गरीबी, भूख और कुपोषण तथा पर्यावरणीय तौर पर सुरक्षित देश बनाने का संकल्प लिया था। ❑

सह प्रशिक्षक, शस्य विज्ञान कृषि विज्ञान केन्द्र, शाहजहांपुर (उ.प्र.)

पुस्तक चर्चा

प्लास्टिक प्रदूषण के खतरे

कमलेश मीणा

पृथ्वी पर मानव सभ्यता आज प्रदूषण की विकराल समस्या से जूझ रही है। प्रदूषण आज असीमित और अपरिमित हो गया है। जल, थल, वायु के बाद अब हमारा ब्रह्मांड और अंतरिक्ष भी प्रदूषण के दावानल में फंस चुका है। मानव के अपरिमित लालच, विज्ञान तथा उद्योगों के अत्यधिक विकास, अंधाधुंध दोहन के कारण क्षत–विक्षत होते प्राकृतिक संसाधनों और हमारी विलासितापूर्ण जीवन–शैली के कारण करोड़ों वर्ष पूर्व, लाखों वर्षों में पृथ्वी पर पैदा हुआ 'जीवन' आज मौत के कगार पर है। इसे मानव सभ्यता का दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि प्रदूषण रूपी इस 'भष्मासुर' की सृष्टि स्वयं मनुष्य ने ही अपने क्षुद्र स्वार्थों की खातिर की है।

पिछली सदी के अंतिम दशक में प्लास्टिक व पॉलीथिन, महत्वपूर्ण और खतरनाक प्रदूषक के रूप में उभरे थे। प्लास्टिक जनित प्रदूषण दिन–प्रतिदिन विकराल रूप धारण करता जा रहा है तो इसका कारण यही है कि एक ओर तो प्लास्टिक का निर्माण व उपयोग दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है, दूसरी ओर वैज्ञानिक तथ्य यह है कि प्लास्टिक पदार्थों का जैविक विधि से अपघटन नहीं हो सकता। इतना बड़ा पर्यावरणीय प्रदूषक होने के बावजूद प्लास्टिक जैसे विषय पर अभी तक हिंदी में कोई सम्यक जानकारी देनेवाली पुस्तक उपलब्ध नहीं है। इस कमी को लंबे समय से महसूस किया जा रहा था। प्रस्तुत पुस्तक 'प्लास्टिक प्रदूषण' विज्ञान–साहित्य के इस खालीपन की पूर्ति करती है। पुस्तक में प्लास्टिक तथा इसके कारण उत्पन्न प्रदूषण के संबंध में जरूरी तथ्यों को अत्यंत रोचक और वैज्ञानिक तरीके से बताया गया है।

कुछ समय पूर्व तक विज्ञान तथा प्रदूषण आदि विषयों पर हिन्दी में लिखी स्तरीय पुस्तकों की बेहद कमी थी लेकिन अब इन विषयों पर हिन्दी में पुस्तकें तो उपलब्ध हैं लेकिन इन पुस्तकों में एक कमी यह है कि इनमें कठिन वैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग किया जाता है फलस्वरूप आम जनता, विशेषकर ग्रामीण जन इनसे लाभ नहीं उठा पाते। इसके विपरीत सरल भाषा में लिखी पुस्तकों में वैज्ञानिकता और तथ्यों का पूर्णतया अभाव होता है। प्रस्तुत पुस्तक की विशिष्टता इसी में है कि इसमें वैज्ञानिक तथ्य व कथ्यों को सरल, सहज व बोधगम्य भाषा में समेटने का प्रयास किया गया है। पर्यावरण में रुचि रखने वाले आम व्यक्ति को दृष्टिपथ में रखते हुए पुस्तक में कठिन वैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग नहीं किया गया है और साथ ही भाषायी कट्टरता छोड़ते हुए हिन्दी के क्लिष्ट शब्दों से भी बचा गया है।

आमतौर पर माना जाता है कि प्लास्टिक प्रदूषण, नगरीय सभ्यता की देन है और इसके कुप्रभाव भी नगरीय जीवन पर ही पड़ते हैं। लेकिन 'प्लास्टिक प्रदूषण' को पढ़कर और उनमें दिये आंकड़े देखकर हमारी उपर्युक्त धारणा बदल जाती है। लेखक डा. निशांत सिंह ने वैज्ञानिक रूप से यह स्थापित किया है कि प्लास्टिक प्रदूषण के तात्कालिक प्रभाव तो नगरीय जीवन पर ही अधिक पड़ते हैं, लेकिन इसके दूरगामी प्रभावों से ग्रामीण परिवेश ही अधिक प्रभावित होता है। खाली भूमि पर प्लास्टिक कचरे के भराव से मिट्टी की केश–नलिकाएं नष्ट हो जाती हैं जिससे भूजल–स्तर नीचे चली जाता है और भूमि की उर्वरा लगातार कम होती जाती है। इसका सर्वाधिक दुष्प्रभाव खेती और जमीन की उपज से जुड़े लोगों पर पड़ता है।

आंकड़ों की सहायता से पुस्तक में दावा किया गया है कि अब गांवों में भी प्लास्टिक तथा पालीइथिलीन की वस्तुओं का उपयोग दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। मिट्टी के बर्तनों व कुल्हड़ों के स्थान पर प्लास्टिक, बेकेलाइट तथा टेफलान के डिब्बों, कंटेनरों आदि का प्रयोग गांवों में काफी बढ़ गया है। कृषि–कार्यों हेतु जूट के बोरों तथा तिरपाल के स्थान पर अब बहुतायत से प्लास्टिक के बोरों तथा पॉलीइथिलीन की शीटों का उपयोग किया जाता है जिस कारण ग्रामीण कचरे में प्लास्टिक की मात्रा लगातार बढ़ती जा रही है। पुस्तक के माध्यम से लेखक ने चेतावनी दी है कि यदि ग्रामीणों ने अपनी जीवन–शैली परिवर्तित नहीं की तो उनकी कृषि भूमि, प्लास्टिक कचरे से पट जाएगी।

देश में पर्यावरण के संरक्षण हेतु सैकड़ों अधिनियम हैं, कानून हैं लेकिन आमजन की अज्ञानता के कारण ये सख्ती से लागू नहीं हो पाते हैं। इस संदर्भ में आम जनता को जागरूक करने के लिए पुस्तक में अलग से एक अध्याय दिया गया है जिसमें पर्यावरण तथा प्रदूषण से संबंधित अधिनियमों पर विस्तार से चर्चा की गयी है।

वैज्ञानिकता, उपयोगिता और उपादेयता की दृष्टि से देखें तो प्रस्तुत पुस्तक अपने आप में अपूर्व है। पर्यावरण के अध्येताओं और विद्यार्थियों सहित यह पुस्तक, पर्यावरण के क्षेत्र में काम कर रहे गैर–सरकारी स्वैच्छिक संगठनों के लिए भी अत्यंत उपयोगी रहेगी। पुस्तकालय संस्करण में प्रकाशित इस पुस्तक का यदि पेपरबैक संस्करण निकाल कर उसे कम से कम कीमत में आम पाठकों को उपलब्ध कराया जाए तो पुस्तक, प्लास्टिक प्रदूषण के प्रति लोगों में चेतना जाग्रत करने के उद्देश्य में ज्यादा सफल होगी। ❑

पुस्तक : प्लास्टिक प्रदूषण
लेखक : डा. निशांत सिंह
प्रकाशक : सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली–7
पृष्ठ सं. : 152
मूल्य : 150/– रुपये

524/1, गली सं. 21 बी,
साधनगर II, पालम कालोनी
नई दिल्ली–110045

महिला सशक्तीकरण वर्ष में विभिन्न आयोजन

महिला सशक्तीकरण वर्ष के संदर्भ में विभिन्न राज्य सरकारों ने कई कदम उठाए हैं। राजस्थान और मध्य प्रदेश की सरकारें महिलाओं के लिए व्यापक नीति तैयार कर रही हैं तथा उड़ीसा ने राज्य में महिलाओं के लिए एक लाख स्व–सहायता दल बनाने के उद्देश्य से **मिशन शक्ति** शुरु किया है। कई राज्यों ने महिलाओं के विरुद्ध होने वाले अपराधों पर नजर रखने और उनकी समीक्षा करने के लिए जिलाधिकारियों की अध्यक्षता में जिला स्तरीय समितियों का गठन किया है।

महिला सशक्तीकरण वर्ष के संदर्भ में महिला और बाल विकास विभाग और उससे जुड़ी समितियों को देश में महिलाओं का जीवन–स्तर उठाने के काम में लगाया गया है। राष्ट्रीय महिला आयोग ने कार्य स्थलों पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न से संबंधित न्यायालय के आदेश को लागू करने के लिए बैंकों और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के साथ सिलसिलेवार बैठकें की हैं। महिला आयोग ने औरंगाबाद, मुम्बई, भिंड, धर्मशाला, लखनऊ और कोच्चि में जुलाई 2001 में दहेज समस्याओं पर सुनवाई की । पिंपरी और पुणे में कानूनी अधिकारों के प्रति महिलाओं को जागरूक करने के कार्यक्रम आयोजित हुए तथा आंध्र प्रदेश में निजामाबाद जिले के येल्लारेड्डी में देवदासियों के पुनर्वास पर लोक सुनवाई की गई।

केंद्रीय समाज कल्याण बोर्ड ने 14–19 वर्ष के आयु वर्ग की 4,360 छात्राओं के लिए 109 शैक्षिक भ्रमण कार्यक्रमों का आयोजन किया। ये सभी छात्राएं निर्धन परिवारों से हैं जिनके लिए साधारणतः घर से बाहर निकलना संभव नहीं होता। केंद्रीय समाज कल्याण बोर्ड ने विभिन्न आयु वर्ग की स्कूली लड़कियों के लिए पोस्टर बनाने की प्रतिस्पर्धा भी आयोजित की।

केंद्रीय सलाहकार समिति की बैठक में यह सलाह दी गई कि अगले दशक को महिला सशक्तीकरण दशक घोषित किया जाए। समिति की बैठक की अध्यक्षता केन्द्रीय मानव संसाधन मंत्री डा. मुरली मनोहर जोशी ने की। बैठक में इस बात पर सर्वसम्मति थी कि महिला सशक्तीकरण में शिक्षा की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। ❑

बाढ़ और सूखे से निपटने के उपाय

राष्ट्रीय जल संसाधन परिषद की चौथी बैठक 17 जुलाई 2000 को प्रधानमंत्री की अध्यक्षा में हुई, जिसमें नवीनीकृत राष्ट्रीय जल नीति के प्रारूप और राज्यों के बीच पानी के बंटवारे के लिए राष्ट्रीय मार्गदर्शी नीति पर विचार किया गया था। नवीनीकृत राष्ट्रीय जल नीति के प्रारूप और राज्यों के बीच पानी के बंटवारे के लिए राष्ट्रीय मार्गदर्शी नीति पर विचार के लिए केंद्रीय जल संसाधन मंत्री की अध्यक्षता में एक कार्यदल का गठन किया गया। राज्यों और संघ शासित प्रदेशों के जल संसाधन व सिंचाई मंत्री इसके सदस्य होंगे।

इन कार्यक्रमों के अंतर्गत मार्च 2001 के अंत तक 23 राज्यों में 140 वृहत/मध्यम परियोजनाओं के लिए 5,755 करोड़ रुपये और दस विशेष श्रेणी के राज्यों में 2,187 छोटी सिंचाई स्कीमों के लिए लगभग 123 करोड़ रुपये जारी किए हैं। इस प्रकार मार्च 2000 तक वृहत/मध्यम स्कीमों के जरिए 786 हेक्टेयर अतिरिक्त भूमि की सिंचाई की नई क्षमता तैयार की गई है। इन कार्यक्रमों की मदद से अब तक 18 वृहत/मध्यम परियोजनाएं पूरी की जा चुकी हैं। वर्तमान वित्त वर्ष में इन कार्यक्रमों के लिए दो हजार करोड़ रुपये का बजटीय अनुमान लगाया गया है। इसमें से अब तक विभिन्न राज्यों में 41 वृहत/मध्यम परियोजनाओं के लिए 810 करोड़ रुपये जारी किए जा चुके हैं। ❑

आर. एन./708/57
डाक–तार पंजीकरण संख्या : डी (डी.एल.) 12057/2001
आई.एस.एस.एन. 0971–8451, पूर्व भुगतान के बिना आर.एम.एस. दिल्ली में
डाक में डालने के लिए लाइसेंस : यू (डी.एन.)–55/2001

R.N./70
P&T Regd. No. D(DL) 12057/
ISSN 0971-8451, Licenced under U (DN)-55/
to Post without pre-payment at R.M.S. D

श्री सुरेश चोपड़ा, महानिदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली–110001 द्वारा प्रकाशित और मुद्रित।
मुद्रक : अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स प्रा. लि., डब्ल्यू–30 ओखला इन्डस्ट्रीयल एरिया–II, नई दिल्ली–20 : **कार्यकारी संपादक : राकेश रेणु**